पं. श्रीराम दवे

सौन्दर्य प्राणी एव प्रकृति का ईश्वर प्रदत्त अनुपम अलकरण है। जिसे देखकर दृष्टा अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है। यही आनन्द सहृदय के हृदय मे रस का रूप धारण कर लेता है जो पात्रता के आधार पर ब्रह्मानन्द और विषयानन्द के रूप मे परिवर्तित हो जाता है।

कवि प्रकृति के सौन्दर्य को साधारण धर्म के आधार पर जोडकर कविता के माध्यम से प्रकट करता हुआ, स्वयं आनन्द का अनुभव करता है एव पाठक को भी आनन्द प्रदान करता है।

यही सौन्दर्य नारी का अवलम्बन पाकर शृंगार रस को जागृत करता हुआ रतिभाव उत्पन्न करता है। संभोग शृंगार मे यह रतिभाव मनुष्य में सगमोत्सुक्य पैदा करता हुआ इन्द्रिय सुख प्रदान करता है। वही शृंगार विप्रलभ्य में स्मृति निष्ठ होकर विरह वेदना प्रकट करता है। यही शृगार रस जब वासना विकृत हो जाता है तो कालान्तर में विरक्ति होने पर वैराग्यजनक बन जाता है।

आधुनिक सौन्दर्योपसक भी नायिका के अघभंगिमा आदि को कसौटी बनाकर उसे विश्व सुन्दरी का सम्मान प्रदान करता है। इस विश्यपटल पर हमें सौन्दर्य की विविध लीलाएं दिखाई पडती है जिसे शब्द सीमा में बांधना बहुत कठिन होता है।

जैसे एक ही ईश्वर मनुष्य की भावना के अनुसार अनेकरूप धारण करता हुआ उपासक को आनन्द प्रदान करता है वैसे ही सौन्दर्य भी रागी और विरागी के हृदय में उसकी भावना के अनुसार प्रतीत होता है।

सौन्दर्यलीलामृतम्

पं. श्रीराम दवे
कवि-विरचितम्

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

दिल्ली संस्कृत अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

प्रकाशक :
राजस्थानी ग्रन्थागार
प्रकाशक एवं वितरक
सोजती गेट, जोधपुर
फोन : कार्यालय : 623933
निवास : 432567

रचयिता : **पं. श्रीराम दवे**
559-B, श्री निकेतन
8-C रोड, सरदारपुरा, जोधपुर (राज)
फोन : 432520

संस्करण : 2000

मूल्य : एक पचास रुपये मात्र (150.00)

लेजर टाइपसेटिंग :
ए सी. सी कम्प्यूटर
जोधपुर फोन : 621593

मुद्रक :
एस. एन. प्रिण्ट्स
नई दिल्ली

पुरोवाक्

इस अपार काव्य संसार मे कवि ही प्रजापति है, जो पुरुष और प्रकृति के संयोग से अपनी इच्छा के अनुसार नई-नई सृष्टि करता रहता है। कभी वह नारी के काले केशो को और गोरे मुख को मेघ और चन्द्र बनाता है तो कभी कमल और भोरे, तो कभी गगा-जमुना के संगम का रूप दे देता है। कवि को नारी के लावण्य को प्रकृति के साथ जोड़ने मे अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। वह तो वनिता के सौन्दर्य वैभव मे जुडे श्रृंगार रस मे ब्रह्मानन्द का अनुभव करता हुआ उसे रस का आलम्बन बनाता है।

क्वैते कृष्णकलेवरा हि मधुपाः स्निग्धाः क्व चैते कचाः,
क्वायं मृण्मयकुंभकारकलशः क्वैते च कान्ताकुचाः ।
क्वामी कर्कशपर्वताः क्व वनितापीना नितम्बाः प्रियाः,
सन्त्येते रसकोविदा हि कवयस्तेषां रसैर्योजकाः ।।

क्वेदं पङ्कसमुद्भवञ्च कमलं क्वेदञ्चकान्ताननम्,
क्वाऽवर्तः सरितः प्रवाहजनितो नाभिः क्व रम्या स्त्रियः ।
क्वैते सिंहगजा वनस्य पशवः क्वेयं गतिर्योषिताम्,
वैदग्ध्या जडचेतनामृतयुतिं कुर्वन्त्यमी सूरयः ।।

कहां काले कलूटे भौरे और कहा सुन्दरियो के चिकने चिकुर कहा कुभकारकृत मिट्टी का घड़ा, कहां कान्ता के कमनीय कुचमण्डल कहा कर्कश पर्वत कहां वनिता के पीन नितम्ब। यह तो रसज्ञ कवियो का चमत्कार है कि वे इन जडपदार्थो को गुणसूत्रो से जोडकर चेतन बना देते है।

कहा कीचड का कमल कहां कान्ता का मनोहर मुख, कहा नदी के प्रवाह मे पडा भवर कहां कान्ता की कोमलनाभि, कहा जंगली पशु सिह और हाथी, कहा कामिनी की सुन्दर चाल, यह तो कवि का वैदग्ध्य है कि वह जड चेतन को अपने काव्यामृत रस से जोड देता है।

कवि के सौन्दर्य बोध को वनिता विलास से जोड़ना सौन्दर्य की अवमानना होगी। कवि तो विबुधपुरोहित की तरह है जो वर-वधू को गृहस्थ सूत्र मे बांधने की तरह प्रकृति के साथ योषिताओ के अङ्गो का धर्म सम्बन्ध स्थापित करता है। उसे तो साधारण धर्म के माध्यम से कविता कामिनी को अलंकारो से मण्डित करने मे आनन्द की अनुभूति होती है जिसे सहृदय ही जान सकता है।

कवयो विबुधा विप्राः प्रकृत्या सह योषिताम्।
अङ्गानां धर्मसम्बन्धं कुर्वते साधुचतसा॥

मनुष्य अपने जीवन मे बहुतेरे भावो का अनुभव करता है। वे मानव हृदय मे बसने वाले भाव साहित्यशास्त्र मे रति आदि स्थायी भाव कहलाते है, जो वस्तुतः एक प्रकार की चित्तवृत्तियां हैं। जब वे स्थायिभाव "सत्यं विज्ञानमानन्द ब्रह्म" इत्यादि वेदवाक्य के अनुसार सत्य तथा विज्ञान रूप होने से स्वत· प्रकाशमान आत्मानन्द के साथ अनुभूत होते है, तब वे ही स्थायी भाव, रस सज्ञा को प्राप्त करते है। उसी अवस्था मे "रसोऽहम्" ऐसी प्रतीति होती है। परन्तु उन स्थायी भावो को आत्मानन्द का साथ, तब तक नही हो सकता जब तक आनन्द स्वरूप आत्मा के ऊपर जो अज्ञान का आवरण छाया हुआ है वह हट नही जाता। इस ऊावरण को हटाने के लिये एक अलौकिक व्यापार की सृष्टि की जाती है यह लोकोत्तर व्यापार आनन्द स्वरूप को ढकने वाले उस आवरण को हटा देता है।

इसलिये काव्य निर्माण मे भी आनन्द प्राप्त होता है। यह तो भारती का विचित्र विलास है। इसका अनुभव कवि को ही हो सकता है। काव्य निर्माण के लिये जो प्रयोजन बतलाए है वे तो प्ररोचक उपाय मात्र है। परमार्थत काव्य का प्रयोजन रसास्वादमूलक आनन्दातिशय ही है। यह कवि और पाठक दोनो मे सामान्य होता है।

मैने यह खण्ड काव्य १९४९ मे, लिखा था, जब मै देश विभाजन के बाद सिन्ध राजस्थान होता हुआ बम्बई आया था। बम्बई मे एक सस्कृत अध्यापक था। वहा आवास समस्या के कारण हम चार-पाच जने एक छोटी केबिन मे रहते थे। सायकाल चौपाटी पर घूमने चले जाते। हमारे साथ एक मित्र बडे रसिक थे वे वहा के दृश्यों को रसिक भाव से देखा करते थे। कविहृदय होने के कारण मैने भी वहा के दृश्यो को अपनी कल्पना के साथ जोड कर काव्यबद्ध कर दिया। इस काव्य मे शृंगार रस के दोनो पक्षो का चित्रण है। इस मे सौन्दर्य सयोग, वियोग एव वैराग्य का समन्वय है।

अस्मिन्मोहमयी विशालनगरीगर्भे कुतो विश्रमः,
लीना प्रस्थविचिन्तने तु कवितासम्भावनाऽप्यात्मनः ।
विश्रान्त्यै मनसः पयोधिपुलिने प्राप्तो मनागेकदा,
दृष्टं तत्र रसान्वितं कविहृदा यत्तन्मया वर्णितम् ॥

आज इस कृति को दिल्ली सस्कृत अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित करने जा रहा हूँ जिसका मूल्याकन तो सहृदय रसज्ञ ही करेगे।

—श्रीराम दवे

सौन्दर्य-लीलामृतम्

सुविदितं खलु एतत् साहित्यविदाम् "अपारे काव्य-संसारे कविरेव प्रजापतिः" इति। असुभगा खलु कवेः सा सृष्टिः यत्र नास्ति प्रकटितभावगाम्भीर्यं प्रकृतिसौन्दर्यम्। नीरसं च गण्यते तत् महाकाव्यं यत्र न विलसति रसिकजनाकर्षकं ललनाजनविलास- वर्णनम्।

तारुण्यं हि जीवनस्य सारभूतं सर्वस्वम्। उल्लघिता चेत् तस्यानुभूतिः वृथैव स्यात् मानवदेहपञ्जरे प्राणपक्षिणा प्रवेशप्रयासः। नास्वादितञ्च येन सौन्दर्यामृतं वृथा गतं तस्य जीवनं।

अनधिगते च शृंगारसुधारसास्वादे किं मानं स्यात् शृंगारप्रतिपक्षिणो वैराग्यस्य। नाधीतं चेत् यौवने शृंगारशतकम् किं मूल्यं स्यात् वार्धक्ये वैराग्यशतकस्य।

नास्वादितं चेत् अघटितघटनापटीयस्याः विचित्रविलासलासिन्या मायायाः विविधव्यवहारमाधुर्यं कुतः स्यात् अखण्डानन्दसन्दोहविहारिणः ब्रह्मणः साक्षात्कारे आनन्दाभूतिः।

ससारिण स्वजीवने भुक्तये भौतिक सुख कामयन्ते, सन्यासिनश्च मुक्तये आध्यात्मिकं सुखम् अभिलषन्ते। उभयो सुखाभिलाषा तु समाना एव। भोगिनो बाह्यानन्दे निमग्नाः योगिनश्च तदेव अन्विष्यन्ति आभ्यन्तरे। उभावपि आनन्दमेव मृग्यमाणौ दृश्येते। एक स्वमनोरञ्जनाय सुन्दरीमवलम्बते अपर तदर्थमेव दरीमवलम्बते। आनन्दबीज तु उभयोरपि समानमेव। अस्ति केवल प्रेक्षामात्रे भेद ।

वैराग्ये सञ्चरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः ।
श्रृंगारे रमते कश्चित् भुवि भेदाः परस्परम् ॥

यद् यस्य रुचिरं नास्ति, तस्मिन् मनोज्ञेऽपि तस्य स्पृहा न दृश्यते। "रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामः सरोजिन्याः" प्रेमातुरस्य भोगिनः योगिनश्च समाना एव दशा।

वियोगिनः कृते तु—

प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा
पर्यङ्के सा पथि पथि च सा तद् वियोगातुरस्य ।
हं हो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः ॥

वेदान्तिनः कृतेऽपि—

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥

रसिक रसानुभूत्यै सुन्दर्याः अगानां वर्णनं करोति, भक्त स्वान्त सुखाय इष्टदेवतायाः सौन्दर्य वर्णयति। उभयोरपि सुखावहत्वं सामान्यम्। केचित्तु महात्मान प्रियारूपेणैव परमं पुरुष भजन्ते।

भगवान् आद्यशकराचार्यः सौन्दर्यलहर्या भगवत्या प्रीत्यर्थ तस्या देहसौन्दर्य वर्णयति। कविरपि रसास्वादनाय तदेव कुरुते। योगिनो धीरा येषा विकारहेतौ सत्यपि न विक्रियन्ते चेतासि, अपरे न तथा।

सौन्दर्य हि वज्रादपि बलवत्तर साधनं मुनीनां तपो मानमर्दनाय। न स्यादेव किमिति सत्यपि कठोरे कुलिशे पाकशासन उपयुंक्ते सौन्दर्यसरसा· अप्सरस· तपस्विना तपस खण्डनाय।

किमिति बहिर्बाधते सुन्दरीणां सौन्दर्यमिति दरीसश्रयो यतीनाम्? एव भवति चेत् केसरीभीताना जम्बूकानामेव निदर्शनम् एतत्। यस्या मन्दोऽपि करस्पर्श मा भवतु मे पुण्यक्षये कारणम् इति मन्यमाना· मुनयः स्मारयन्ति रविकरस्पर्शकुपथ्यानाम् तिमिरसेविनां कौशिकानामेव चरितम्। सौन्दर्यास्वादने अभेदबुद्धीना अनासक्तचेतसा न दृश्यते क्वापि इय विडम्बनावेदना जनकशुकादीना ब्रह्मदर्शिनाम्। "उदिते परमानन्दे नाह त्वं न वै जगत्"

मन्ये अपक्वमतयो यतय एव ललनालावण्य रौरवनरक मन्यमानाः परिहरन्ति तस्याः दर्शनम्। वज्रमिव आपतितं शिरसि इति मन्यमानाः, किवा तदेव सौदामिन्या· स्फुरणमिव असहमानाः क्लैब्योपगूढचेतस· ऊर्ध्वरेतसः अभ्यसन्ते प्रशान्तासु गिरिकन्दरासु मन्दीकृतविक्रिया हठयोगक्रियाम्। मा मे चरण स्पृशतु अगणितपुण्यापहारिणी यतिजनमनोविदारिणी कस्यापि गृहिणी इति निवर्तते कलत्रदर्शनात् कश्चित् बलवदिन्द्रियग्रामापहृतवीर्यो यतीन्द्रवर्य। पर यथा यथा इन्द्रियप्रग्रह कर्षति तथा तथा वेगेन धावति अय मनोवाजी। कि ब्रूमो दिने इन्द्रियेभ्यः दूरम् अपसार्यमाणा इयं योगमाया निशायां मनसि सुन्दरीरूपेण निषण्णा निद्रां व्यपोहति तपस्विन। विचित्रं विधेर्विधानम्।

सौन्दर्यमहिमानं विजानत· अष्टादशपुराणाना विधातुः जरठस्यापि व्यासस्य दर्शने अवगुण्ठनं कुर्वन्ति युवत्य· ता एव च उपगतभूमान युवान शुकं दृष्ट्वा अविवृतवदना· एव तिष्ठन्ति। नात्र सौन्दर्यमपराध्यति, अपराध्यति चेत् सौन्दर्ये दृष्टिभेद एव। अविजानतामधीराणामेव ललनालावण्याद् भयम्।

कस्यास्ति अविदित भगवतो कृष्णस्य लावण्यललित चरितम्। गोपिकाना गीते तु रममाणा दृश्यन्ते वीतरागा अपि भक्तपुंगवा। "अधर सीधुनाऽप्यायस्व न" इति ब्रुवतीना गोपिका चरित किमस्ति अवाचनीयम्।

आगमोपसकानां सुन्दरीसमुपासना किमस्ति निन्दनीया। सूफीमतावलम्बिना साधूना तु ब्रह्मदर्शनं सुन्दरीरूपे एव प्रकटितं प्रदर्शितं कविभिः।

काव्यप्रेरणा बीजम्—

लावण्यलीलास्थली खलु इय विशाला मोहमयी नगरी। प्रसिद्धेय व्यवसाये वैभवे विविधव्यापारे च। जलधितटवासिन्याः अस्याः प्रत्यह वर्धते विस्तारो व्यापारश्च। वैभव दारिद्रयञ्च सममेव विचरत अस्या गभीरे गर्भे। सन्ति अत्र नाकिनामिव धनिकाना रम्याणि हर्म्याणि। सममेव अत्रैव दृश्यन्ते दारिद्र्यपोषकाणि, नरकोपमदुखानि, दरिद्राणाम् असरख्यानि कीचककुटीराणि अपि। सन्ति च अत्र विद्वास, साधवः, उपदेष्टारः, आचार्या, कवयो, मनीषिण, नेतारः अभिनेतारश्च, सममेव च नास्त्यत्र अभाव मूर्खाणां, दुर्जनानां, चौराणां, शठानां, विटानां नटानामपि च। विराजन्ते अत्र विशालाः देवालयाः, रम्याणिस्वाध्यायसदनानि मनोहराणि प्रवचनप्रांगणानि। तत्रैव दृश्यन्ते विशाला सीधुशालाः पानगोष्ठीगृहाणि, नृत्याभिनयनिकेतनानि, विलासविनोदसदनानि, नटविटनिकेतनान्यपि।

नास्ति अत्र अभावो सलज्जानां कुलाङ्गनानाम् नापि च निर्लज्जानां वाराङ्गनानाम्, नापि अभिसारिकाणा कुट्टिनीनामपि दुर्भिक्षम्। भूयास सन्ति अत्र उदरंभरिणो विलासिन रूपाजीवाः विलासिन्योऽपि च। न चाप्यसुलभा लावण्यक्रेतारो विक्रेतारश्च विदेशीया स्वदेशीया वा विलासिन। असरख्यानि च सन्त्यत्र मनोरञ्जनसाधकानि केलिगृहाणि। पूर्णिमायामपि अत्र अस्ति अमाकालिक ध्वान्तम्। अमायामपि च विलोक्यते पूर्णचन्द्रप्रकाश। तिमिरप्रकाशयो, पापपुण्ययोः, द्रारिद्र्यवैभवयो, क्रीडास्थलीय मोहमयी नगरी अहोरात्रं जागर्ति।

अत्र सायकाले चौपाटीसञ्ज्ञके जलधितीरप्रदेशे प्रत्यह भवति विश्वसौन्दर्यसम्मेलनम्। परिभ्रमणार्थ समागताना विविधप्रान्तदेशवासिना नराणा नारीणां भवति चात्र दर्शनीय· सगम· । स्वकीये प्रमोदव्यापारे मग्ना जना तृण मन्यन्ते अन्येषा स्तुति निन्दा वा। खाने, पाने, लेहने, चोषणे, भाषणे, गाने, लालने, नर्तने स्वच्छन्दा अत्रत्या नापेक्षन्ते परेषा दीक्षा समीक्षा वा।

सत्यपि नानाविधे अन्यस्मिन् मनोहारिणि व्यापारे, अत्रत्यं ललनालावण्य सविशेष समाकर्षति जनाना चेतांसि। मनसिज-विलास-समराङ्गणे विचरन्त्य· इमा नानादेशीया युवत्य· पञ्चशिखमिव कटाक्षैर्वहन्त्य स्वकीयेन ललित-लावण्य-वैभवेन मोहयन्त्य इव यौवानारूढानाम् अनूढानां हृदयानि, दरीदृश्यन्ते स्वर्गादवतीर्णा इव सरसा· अप्सरसः।

प्रकृतेर्लीला वीक्षमाणस्य तटस्थस्य पुरुषस्य समतामिव विदधत कवे· नास्ति असुलभा काव्य-सौन्दर्य-साधना। वार्धक्येऽपि पथ्यमिव सेवनीयमस्ति सौन्दर्यम्। परमपेक्षते चात्र रसचर्वणे अनासक्तियुक्त वैशिष्ट्यम्। प्रभवन्ति तत्र सहृदया· कवय· इति मा भवतु शृगारवर्णने विकृतिजनको विसंवाद· ।

सन्ति खलु अत्र आत्मारामाः यतयोऽपि सौन्दर्यसमुपासकाः कवय । लावण्य वाटिकाचञ्चरीका अमी मुनयोऽपि प्रतिभापोषका· रसिकवर्या एव। उभयोरपि सौन्दर्यसाधना तु समाना एव। पर एके अन्तर्वृत्तय· अपरे बाह्यवृत्तय । कार्यनिर्णयेषु रसज्ञा· रसिका एव प्रमाणम्। तेषा मते एतत् सर्व शब्दब्रह्मचेष्टितम् एव ।

अधीतानि चेद् यतीनां सौन्दर्यसुभगानि स्तुति-काव्यानि नाशका स्यात् पलितालकस्य शृगार कवे· केशवस्य, कामपि युवती वीक्ष्य जराजनिते अनुतापे।

महदपकृतमेतन्मे पलितालकैर्हि पश्चिमे वयसि ।
हा ! हा ! मृगशावाक्ष्यस्तातेति यां सम्बोधयन्त्यद्य ॥

दृश्यन्ते चात्र एकान्ते स्थिता· विवशतावशवदा विरहिणोऽपि, प्रणयिन प्रतीक्षमाणा शकटीसमारूढा·, पञ्जरेनिबद्धा· सारिका इव अभिसारिका, अपि

नास्त्यत्र अभावो निराशाग्रस्ताना वैराग्यजुषा मानुषाणाम्, न चापि कल्पनाभावितमानसानाम् मौनभाजामपि मानवानाम्। अत्रास्ति तेषामपि कल्पनाकलितं वर्णनम् ।

काव्यपरीक्षणे तु सहृदयाः रसिका एव प्रमाणम्। मम कृते तु शब्दब्रह्माराधनमेव एतत् सर्वम्।

भवतु एतत् सर्व रसिकाना सुरभारतीप्रणयिनां मनोविनोदाय।

—श्रीरामः दवे



अनुक्रमणिका



मङ्गलम्

सौन्दर्यं लसतीह विश्व-विततं नानाविधं निर्मलम्
तत्रेदं ललनागतं तु कुरुते सम्मोहनं पश्यताम्।
दीप्यन्ते रसगर्भिताश्च हृदये शृंङ्गारभावा अपि,
तस्मिन् हे ललिते! तवैव सुभगं सद्वैभवं भासताम्।।१ ।।

इस संसार मे फैला हुआ नाना प्रकार का निर्मल सौन्दर्य हमे यहां दिखाई पड़ता है। उसमे ललनागत सौन्दर्य दर्शको को मोहित किये बिना नही रहता। उसे देखकर मन मे रसगर्भित शृंगार भाव भी उठने लगते है। हे भगवति! ललिते! उस सौन्दर्य मे मुझे तुम्हारे ही सुन्दर वैभव की प्रतीति होती रहे ।।१ ।।

त्वत्तोऽवाप्य वरं बभूव मदनः सौन्दर्यचूड़ामणिः,
सौन्दर्याम्बुधिवीचिविभ्रमजड़ा जाता यतीन्द्रा अपि।
स्त्रैणं रूपमिदं त्वदीयममलं शृंगारलीलाऽमृतम्
भूयान्मे समुपासनीयमनधं लीलायमानं शिवे!।।२ ।।

कामदेव भी तो तुमसे ही वर प्राप्त कर सर्वश्रेष्ठ सुन्दरता का प्रतीक बना था। क्या कहे ये यतिवर भी तुम्हारे सौन्दर्य सागर के वीचिविभ्रम मे मस्त हो जाते है। तुम्हारा यह स्त्रीरूप भी तो निर्मल शृंगारलीला का अमृत है इसलिये हे भगवति। तुम्हारा यह लीलायमान निर्मल सौन्दर्य मेरा उपासनीय बना रहे ।।२ ।।

सौन्दर्यं शिवसत्यभावसुभगं यत्कल्पितं सूरिभिः,
जातं तन्नवजातदूषितधियां दुर्बोधनैर्गर्हितम् ।
येनैषा वितताऽपकीर्तिलघुता शृङ्गारभावेऽधुना
सा नो संलभतां कदापि ललिते ! काव्ये पदं मामके ॥३ ॥

हमारे पूर्वज ऋषियो ने इस सौन्दर्य को शिव ओर सत्य के साथ जोडा था । वह नवजात दूषित मतिको के कुतर्क से निन्दित हो गया जिसके कारण इस सौन्दर्य के शृंगार भाव मे अपकीर्ति की लघुता फैल गई । हे भगवति ! आप कृपा करे कि वह लघुता मेरे काव्य मे प्रवेश न करे ॥३ ॥



सौन्दर्य-विभावना

सौन्दर्यस्य गवेषणाय सकलं विश्वं समुत्कण्ठितम्
वृद्धा राष्ट्रविनायका अपि रताः सौन्दर्य-सम्भावने।
लावण्य-प्रतिमान-मानन-मुखैर्मानेन या मानिता
सा कीर्तिं भजते हि विश्वजयिनीवात्राऽभितः सुन्दरी ॥१ ॥

आज सारा संसार सौन्दर्य की खोज में उत्कण्ठित दिखाई पड़ता है। वयोवृद्ध राष्ट्र के नेता भी सुन्दरता की प्रतियोगिता मे जो सुन्दरी निर्धारित मानदण्डो मे खरी उतरती है उसे विश्वसुन्दरी का सम्मान प्रदान करते है ॥१ ॥

कश्चिच्चन्दनवल्लरी-समभुजे, कश्चित्कचाडम्बरे,
कश्चित्पाटलगण्डमण्डलमदे कश्चिच्च बिम्बाधरे।
कश्चिद्वा कुचकुड्मले च कदलीस्तम्भे नितम्बेऽपरः
वामाङ्गेषु विमुग्धचित्तरसिकैः किं किं न सम्भाव्यते ॥२ ॥

सौन्दर्य परीक्षको द्वारा भी, सुन्दरियों की, चन्दनलतासी भुजाए, विविध केश रचनाएं, गौर गण्डस्थल, बिम्ब से अधर, कुड्मल से कुचमण्डल, कदली स्तम्भ सी जंघाए, पीन नितम्ब बिम्ब, सौन्दर्य के प्रतीक मानदण्ड माने गये है, इनकी मनोहरता से ही वे सम्मान प्राप्त करती है ॥२ ॥

केचित्कुन्तलभार-हारनिगडैः केचित्कटाक्षेषुभिः,
केचित् स्निग्ध-कपोल-लोष्ठ-हननैः कर्णोत्पलक्षेपणैः ।
केचित् पीनकुचोच्चशैलशिखरैर्जङ्घाभिधैर्मुद्गरैः
वामाभिर्मृदिता धुता अपि नरा नो यान्ति दूरं शठाः ॥३ ॥

लोग भी सुन्दरियो के इन केशपाशो मे बन्धे जाने पर, कटाक्ष बाणो की मार से घायल होने पर, कपोललोष्ठो का प्रक्षेपण पाकर, कर्णभूषणो का आघात सहकर, पीन स्तनो से पीड़ित होकर, जंघामुद्गरो के आघात से घायल होकर भी उनका पीछा नही छोडते । सौन्दर्य के पीछे कितने पागल हो जाते है लोग ॥३ ॥

वेणीं पश्यति वासुकिः सह तृषा वाणीं प्रिया कोकिला
श्रोणीं शैलतटं गतिञ्च कृपणाः सिंहा मराला गजाः ।
चन्द्रश्चारुमुखं मृगाश्चनयनं हास्यं स्मितं चन्द्रिका
कान्ते ! त्वत्सुषमासुधा-कणकृते लुब्धं समस्तं जगत् ॥४ ॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारी सुषमासुधा के कण पर सारी प्रकृति मुग्ध दिखाई पड़ती है । वासुकि तुम्हारी वेणी के वैशिष्ट्य का प्यासा है, कोयल वाणी की मधुरता पर ललचा रही है, पर्वत नितम्ब बिम्ब की ओर निहार रहा है, तुम्हारी चाल पर सिह, हाथी और हस होड़ लगाए बैठे है चांद मुखड़े की ओर देख रहा है, हरिण नयनो की चञ्चलता की चाह लिये बैठे हैं तो चाँदनी तुम्हारी मुस्कान पर लालायित दिखाई पड़ रही है ॥४ ॥

काव्यं तद्यशसे भवत्यनुपमं यस्मिंस्त्वदीयं यशः,
नाट्यं चापि तदेव भाति रुचिरं लास्येन ते मण्डितम् ।
गीतं कर्णसुखं तदेव बहुधा त्वत्कण्ठतो निर्गतम्,
नूनं सा सकला कलाऽस्ति विकला यस्यां न ते सङ्गमः ॥५ ॥

हे सुन्दरि । आश्चर्य है कि काव्य भी वही अनुपम यशस्वी गिना जाता है जिसमे तुम्हारे सौन्दर्य का गुणगान किया गया हो । नाटक भी तुम्हारी विलासलीला से ही रुचिकर लगता है। गीत भी वही मधुर लगता है जो तुम्हारे कण्ठ से निकला हो । वस्तुत वे सारी कलाए निरर्थक सी लगती है जिनमे तुम्हारे सौन्दर्य का सयोग सम्मिलित न हुआ हो ।।५ ।।

पातुं तेऽपि यतन्त एव यतयः सौन्दर्य-लीलामृतम्
दृष्टुं तेऽपि समीहमानमनसो लावण्यलीलाटवीम् ।
आघ्रातुं सुषमाऽभिरामकुसुमं वाञ्छाऽस्ति तेषामपि
बद्धा ये नहि सङ्गमोत्सुकधियः काषायकारागृहे ।।६ ।।

हे सुन्दरि ! क्या कहे ! कई योगी लोग, जो काषाय वस्त्रों के कारागृह मे बन्धे हुए नही है तुम्हारी सौन्दर्यलीला सुधापान के लिये लालायित रहते है । वे भी तुम्हारे लावण्य वाटिका मे विहार करना चाहते है । उनकी भी कामना रहती है कि उन्हे तुम्हारी सुषमा सुमन की सौरभ प्राप्त हो ।।६ ।।

सौन्दर्यामृतवञ्चिता हि नितरां लोके निराशा जनाः,
अन्विष्यन्ति तदेव बाह्यसुषमायां ते जड़ायां जड़ाः ।
वीक्षन्ते विवशाश्च चक्रसुषमामाभ्यन्तरे योगिनः,
सौन्दर्यं परिहाय कस्य हृदये स्थैर्यं चिरं दृश्यते ।।७ ।।

दुर्भाग्यवश जो इस सौन्दर्य सुधा से वञ्चित है वे निराशाग्रस्त लोग इस जड़ प्रकृति मे ही सुन्दरता ढूढते रहते है । योगी लोग भी उस सौन्दर्य को पाने के लिये षट्चक्र साधना हेतु अन्तर्मुख हो जाते है । सौन्दर्य के बिना किसका चित्त चिरकाल तक स्थिर रह पायेगा ।।७ ।।

सौन्दर्यं नहि चर्मरागनिहितं नो वाऽङ्गभङ्ग्याश्रितम्,
कस्यापि प्रतिभाति गौरवनिता यूनो मनोहारिणी ।
कृष्णा कुञ्चितकुन्तलापि सुभगा कस्मैचिदाश्लिष्यति,
लावण्यं ललनागतं तु मनसो मानेन वै मीयते ॥८ ॥

सौन्दर्य केवल त्वचा के रग पर ही आश्रित नही रहता, न वह अङ्गो की भगिमा पर ही टिका हुआ है । किसी के लिये गौराङ्गना सुन्दरी होती है तो कोई कुञ्चितकेशी श्यामाङ्गी को ही सुन्दर समझते है । ललनाओ के लावण्य का मानदण्ड तो मन ही होता है ॥८ ॥

कामं चित्रकला विशालविपटैः भूयात्तटैर्मण्डिता,
किंवा कोकिल केकिहंसलसितैर्दृश्यैर्भवेद्भूषिता ।
तावन्नो परमां परन्तु भजते चेतोहरां सा श्रियम्
यावन्नो नयनाभिरामवनितालीला पदं विन्दते ॥९ ॥

चित्रकला को चाहे कितना ही विशाल वृक्षो भरे तटिनी तटो से सजाया जाय, किवा कोयल मोर और हंसो के सुन्दर दृश्यो से अलकृत किया जाय, परन्तु वह चित्रकला तब तक हृदयहारिणी शोभा को प्राप्त नही कर पाती जब तक नयनामिरामवनिता की लीला को वहां स्थान न दिया जाय ॥९ ॥

वन्ध्या शिल्पकलापि कल्पकुशलैस्तावत्प्रयत्नाङ्किता
रत्नैर्वा खचिता ह्यनर्घविभवैः प्रासादकक्षाश्रया ।
यावन्नो ललनाविलासलसितैः शृंगारभावाञ्चितैः
कन्दर्पोदयकारकैश्च सुभगैर्दृश्यैश्चिता जायते ॥१० ॥

कला कुशल, शिल्पकारो द्वारा, उट्टकित, किवा अमूल्य रत्नो से जटित प्रासाद कक्षो मे सजाई गई वह शिल्पकला भी निरर्थक सी लगती है जब तक उसमे ललनाविलास विलसित, शृगार भावो से रञ्जित, कन्दर्पोदय कारक, सुन्दर दृश्यो का समावेश न किया जाय ॥१० ॥

विज्ञापनञ्चापि न चत्वराङ्के,
सञ्जायते पण्यपथोपकारकम् ।
विभाव्यते यत्र न चारुगात्रा,
सौन्दर्यलीलामुपजीवयन्ती ॥११ ॥

चौराहे पर सजाये गये विज्ञापन भी व्यापार मे अधिक उपकारक नही हो पाते जब तक उसमे सौन्दर्य लीला को प्रकट करती हुई सुन्दरी को प्रदर्शित न किया जाय ॥११ ॥

न वृत्तपत्रं भजते प्रतिष्ठाम्,
विशिष्टनिष्ठां नवपाठकानाम् ।
न यत्र लभ्या ललनाङ्गकानाम्
विलासलीला स्मरदीपकानाम् ॥१२ ॥

आज उस समाचार पत्र को भी तब तक नये पाठको को आकृष्ट करने का श्रेय प्राप्त नही हो सकता जब तक उसमे स्मरोद्दीपक सुन्दरियो के अङ्गो की विलासलीला का प्रदर्शन न किया जाय ॥१२ ॥

साऽद्यास्ति वन्ध्या विपणिप्रतिष्ठा
नानाम्बराडम्बरमण्डितापि ।
यत्राङ्गनायौवनभूषिताङ्गी
न स्वागतं द्वारमुखे विधत्ते ॥१३ ॥

आज नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रो से सजी हुई प्रतिष्ठित दुकान भी तब तक ग्राहको को आकृष्ट करने मे सफल नही हो पाती जब तक उसके मुख्य द्वार पर स्वागत के लिये अलकृत युवती को नियुक्त न किया गया हो ॥१३ ॥

दिव्यायुधो देवगणो बलिष्ठः,
पयोधिजातामृतपानपुण्यम् ।
तावन्नलेभेऽसुरवृन्दविघ्ने,
प्राप्ता न यावत्सुरमोहिनीयम् ॥१४॥

दिव्य शस्त्र धारण करने वाले बलिष्ठ देवता भी असुरो की बाधा के कारण तब तक समुद्रमन्थन से निकले अमृत का आस्वादन पुण्य प्राप्त न कर सके जब तक सुरसुन्दरी मोहनी वहा न पहुंची ॥१४॥

वासनाव्यसनासक्ते, विष्टे सौन्दर्यमन्दिरम् ।
सौन्दर्योपास्तिसक्तानां भक्तानां गलितं यशः ॥१५॥

वस्तुतः जबसे इन वासनासक्त लोगो ने इस सौन्दर्य मन्दिर मे प्रवेश किया है तब से इन सौन्दर्योपास कभक्तो की कीर्ति को बड़ा आघात लगा है ॥१५॥

धन्यं कुसुमसौन्दर्यं जायते देवमस्तके ।
तदेव विन्दते क्लेशं मर्दितं मूढमुष्टिना ॥१६॥

कुसुम की सुन्दरता देव मस्तक पर चढने पर तो धन्य हो जाती है परन्तु वही सुन्दरता मूर्ख की मुट्ठी मे मसली जाने पर रो पड़ती है ॥१६॥



सौन्दर्यलीला

एकस्मिन् दिवसे दिनान्तसमये जीव्याजडं मानसम्,
किञ्चिद् रञ्जयितुं पयोधिलहरी-लीलाविलासश्रिया ।
प्राप्तो मोहमयीसमृद्धिमुकुरे चौपाटि-केलिस्थले
सौन्दर्यं यदपश्यमत्र ललनानिष्ठं हि तद् वर्ण्यते ।।१ ।।

एक दिन सायंकाल के समय, जीव्याजड़ीभूत इस मन को सागर की लहरी लीला से बहलाने के लिये मुम्बई की समृद्धि के मुकुर प्रसिद्ध कामिनी-केलि प्रांगण चौपाटी पर पहुंचा। वहां जो कुछ ललना निष्ठ सौन्दर्य को देखा उसका ही मै कवि भावना से वर्णन कर रहा हूँ ।।१ ।।

शृङ्गारोत्सवसाधनाय मिलिता वामा नु किं सर्वतः
नाना देशविदेश-वासिकलिते लावण्यपण्यस्थले ।
सज्जा-मण्डनमण्डिता नवनवैर्भावैर्मनोहारिणीः
कन्दर्पो रसिकार्चनाय किमु वा रामा इमाः प्रैरयत् ।।२ ।।

इन रुसुन्दरियों को देखकर कई सम्भावनाए मन मे उठने लगी। क्या ये कामिनिये विविध देश-विदेश वासियो द्वारा निर्मित इस लावण्य पण्य स्थल पर शृंगारोत्सव मनाने आई है? किवा कामदेव द्वारा नानाविध शृंगारों से सजाई गई, इन सुन्दरियो को अपने विविध हावभावो से रसिको को रिझाने के लिये यहां भेजा गया है? ।।२ ।।

दृष्ट्वा यज्जरठोऽपि याति सहसा तारुण्यसम्भावनाम्,
चिन्ता लुप्यति चेतसः श्रमभरो जीव्याज्वरः शाम्यति ।
धैर्यं धैर्यवतां मनोजमधुरैर्दृश्यैर्भृशं वेपते,
मन्येऽत्राप्सरसश्चरन्ति भुवने धृत्वा दिवो वैभवम् ॥३ ॥

इन रमणियो को देखकर वीततारुण्य वृद्ध भी सहसा तारुण्य का अनुभव करने लगता है। लोगो की कार्यभारचिन्ता लुप्त हो जाती है। अच्छे-अच्छे वीर पुरुषो का धैर्य भी विचलित हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वर्ग की अप्सराएं अपना सौन्दर्य वैभव लुटाने धरती पर उतर आई है ॥३ ॥

काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना तारुण्य-दीप्तानना,
उत्सेधिस्तनकन्दुकोत्सवलसत्-कौशेयसत्कञ्चुकी ।
स्कन्धालम्बि-सिताम्बरावृतकुचा स्निग्धालकालंकृता
दृष्टा नोऽक्षिपथादपैति सहसा चेतोहरा कामिनी ॥४ ॥

सहसा कोई मृगनयनी, यौवन-देदीप्यमानवदना, स्निग्ध-केशालंकृता, अपने उन्नत कुचकन्दकों को कौशेय कञ्चुक मे छिपाये, अपने कमनीय कन्धों पर उत्तरीय लटकाये, समुद्रतट पर विचरण करती हुई नयनो से दूर नही हट रही थी ॥४ ॥

धृत्वा पीन-नितम्बबिम्ब-कवचं जंघोत्सवं सुन्दरम्
चञ्चच्चारुपदक्रमोपरसिकं सल्वारसंज्ञाम्बरम्
प्रावारं नवकञ्चुकञ्च ललितं काचित्तु पञ्चाम्बुजा
यूनां चित्तचकोरमोहजननी गच्छत्यहो चन्द्रिका ॥५ ॥

इतने मे कोई पञ्चनद निवासिनी, पीन नितम्बो पर कमनीय कवच की तरह शोभायमान, जघाओ को मण्डन मण्डित करती हुई सी, मतवाली चाल को अधिक आकर्षक बनाने वाली, सल्वार परिधान पहने उस पर, कञ्चुक के साथ उत्तरीय लटकाये, चन्द्रिका की तरह युवक चकोरो का चित्त चुराती हुई वहां जा रही है ॥५ ॥

चित्रं चञ्चलचञ्चरीकरसिको लब्ध्वाप्यहो पद्मिनीम्
तस्याः सौरभमुग्धमानस इमां मूढो न श्लिष्यत्यहो ।
एकान्ते कुसुमेषु-दीपनकरीं गोष्ठीं प्रियां भावयन्
योगे सत्यपि विप्रयोगविकलो हा हा कथं जीवति ॥६ ॥

आश्चर्य है साथ-साथ घूमने वाला, चञ्चल रसिक भ्रमर, उस सौरभ मोहिनी पद्मिनी को पास पाकर भी उसके परिरम्भण से वञ्चित हो रहा है। पुनश्च आश्चर्य है कि एकान्त मे स्मरोद्दिपिनी गोष्ठी संयोग मे भी वियोग की वेदना मे ही वह जी रहा है ॥६ ॥

काचित्कुन्तलभारभङ्गिरचनासम्मण्डने पण्डिता
धम्मिले धृतपुष्पसायकपदेवोन्मत्त-पादक्रमा ।
हासाविष्कृतकुन्दकान्तिरदना छन्नोपनेत्रेक्षणा
कन्दर्पेण विचालितेव तरुणी सञ्चारिणी दृश्यते ॥७ ॥

कोई केश सज्जा कुशला कामिनी, अपने केशपाश मे काम के वाणो की तरह पुष्पो को सञ्जोये मस्त चाल से चल रही है, हंसती है तो मानो कुन्द पुष्प खिल उठते है। नेत्रो को काले चश्मे से ढक कर काम से विचलित सी प्रतीत हो रही है ॥७ ॥

पार्ष्णिर्युत्तानविधायिपादरलसद्गौरांघ्रिरम्यक्रमा
धृत्वा हाटकचन्द्रखण्डखचितां शाटीञ्च काचिच्चला ।
यस्याः पीनपयोधरौ प्रकुरतः क्षोभं पयोधेरपि
निर्गन्तुं बहिरुत्सुकौ स्मरकरोत्क्षिप्तौ यथा कुन्दकौ ॥८ ॥

कोई कामिनी, ऊंची एडी के पादत्राण पहिने, गोरी एड़िया मटकाती, सुवर्ण के कसीदे से सजी, साड़ी लपेटे चल रही है। जिसके पयोधिको भी क्षुब्ध करने वाले पीन पयोधर कन्दुक क्रीड़ा परायण, कन्दर्प द्वारा उछाले गये कन्दुको की तरह कञ्चुक से उछलकर बाहर आने को उत्कण्ठित हो रहे हैं ॥८ ॥

उत्सेधिस्तनलम्बमानमसितं वेणीयुगं सुन्दरम्
किंवा व्यालयुगं नु पातुमतुलं तारुण्यवित्तं स्थितम् ।
पातुं वा नवयौवनामृतरसं कुम्भोदरे सञ्चितं
लम्बन्ते रसिकात्मनां हि तृषिता द्वारे स्थिता दृष्टयः ॥९ ॥

उसके उन्नत कुच युगल पर लम्बमान दो चोटिया तारुण्य कोश की रक्षा के लिये नियुक्त सापो की जोड़ी सी लग रही है। किवा कुच कलश मे सञ्चित तारुण्यामृत के प्यासे रसिको की दृष्टियाँ द्वार पर मण्डराती सी लग रही है ॥९ ॥

काचित्तत्र करोति सूत्रवसना स्वच्छन्दतन्त्रप्रिया
यूनां मानसचक्रचालनविधौ सिद्धा स्वयंसेविका ।
वासोदर्शितराष्ट्रभक्तितिलका हस्ताऽलसत्पत्रिका
श्वेताङ्गी सितशाटिकानवबकी मीनान् धुनीते दृशा ॥१० ॥

कोई गौरवर्णा स्वातन्त्र्यकामिनी कामिनी खादी के वस्त्र पहिने युवकों के चित्त चक्र को चलाने में सिद्धता दिखा रही है। समाचार पत्र हाथ मे लिये वेश से तो देश भक्त लग रही थी परन्तु श्वेत शाटिका में लिपटी वह नई बगुली कई मत्स्यो के हृदय को कम्पित कर रही थी ॥१० ॥

काचित् कृष्णोपनेत्रा मृदुलकरधृतोत्कृष्टदण्डातपत्रा
स्यूतं पाणौ वहन्ती विवृतकटितटा सारमेयानुयाता ।
गौराङ्गी पाण्डुरास्या चपलतरदृशा चालयन्ती मनांसि
गायन्ती मौनमौनं व्रजति मृदुगतिः सिन्धुतीरे नताङ्गी ॥११ ॥

कोई गौराङ्ग सुन्दरी, काला चश्मा पहिने, एक हाथ मे छोटा छाता उठाए, दूसरे में पर्स लटकाये, अपनी अनावृत कटि को मटकानी, मन ही मन गुनगुनाती, अपने पालित पिल्ले के आगे, अपनी चञ्चल दृष्टि से दर्शको का मन विचलित करती हुई चल रही है ॥११ ॥

काचित् स्वच्छन्दा, जनन्या निवार्यते स्वच्छन्दाचरणाय—

नित्यं नोचितमस्ति तेऽटनमिदं वत्से ! तटेऽसंस्तुतैः
तारुण्योद्धतभावदुष्टमतिभिः शीलानभिज्ञैश्चलैः ।
स्वच्छन्दाचरणं स्त्रियाञ्च सततं लोके न शोभावहम्
मुञ्च त्वं चलतां हि शिष्टकुलजे ! शीघ्रं वरोऽन्विष्यते ॥१२॥

इधर किसी स्वच्छन्दचारिणी युवती को उसकी मां समझा रही है हे पुत्रि ! प्रतिदिन तुम्हारा अपरिचित युवकों के साथ घूमना अच्छा नही है। तुम्हें इनके चरित्र का पता नही, ये जवानी के कारण बडे उद्धत और दुष्ट होते है। फिर स्त्रियों का नित्य स्वच्छन्द विचरण क-- शोभा नही देता। इसलिये तुम इनका साथ छोड़ दो। शीघ्र ही तुम्हारे लिये अभीष्ट वर ढूढ लिया जायगा ॥१२॥

मातर् ! मां किमु मन्यसे भ्रमवशात् चारित्र्यहीनां सुताम्
तारुण्यं चपलं तदस्तु मम तु स्वीयं वशे मानसम् ।
नैते सन्त्यपराः सतीर्थ्यकुलजाः सर्वेऽपि शीलान्विताः
लोकोऽसत्यकथाप्रचारनिपुणः कामं मृषा जल्पताम् ॥१३॥

युवती कहती है, हे मां ! क्या तुम मुझे चरित्रहीन समझ रही हो ? जवानी चञ्चल होती है तो होवे, मेरा मन तो मेरे वश मे है। ये दूसरे नही है मेरे ही सहपाठी है। सभी बडे कुलीन एव शीलवान् है। लोग व्यर्थ मे ही हमारे विषय मे झूठी अफवाहे फैलाते है यह उनका स्वभाव है उन्हे बकने दो ॥१३॥

उद्वाहे करबन्धनं तु विपदामामन्त्रणं जीवने,
भर्तुश्शासनपालने नियमनम् श्वश्रूजनातङ्कितम् ।
चुल्लीसेवनमार्जनादिविषमैः काये क्षयावाहनम्
भीमं यौतुकसंकटं तु सुखदं निर्भर्तृकं जीवनम् ॥१४॥

मा ! विवाह की बात मत कर। विवाह मे हाथ मिलाना ही जीवन मे विपत्तियो का बुलाना है। एक ओर सास का आतक, दूसरी ओर पति का कठोर शासन, उसके साथ हर रोज चूल्हा चक्की झाडू बुहारी की मुसीबतो से शरीर को क्षीण करना, इन सबसे भयकर दहेज का संकट। इससे तो कुवारापन ही अच्छा है ॥१४ ॥

एवं मातृवचोऽवधीर्य चपला स्वच्छन्दचारे रता !
रम्यां लम्पटमोहिनीं नवतमां सम्पाद्य सज्जां तनोः
शृङ्गारोत्सवमण्डपे ननु यथा हर्तुं जनान् प्रस्थिता
प्राप्ता कापि पयोधितीरशफरी शुभ्रावतंसोज्ज्वला ॥१५ ॥

इस प्रकार मा के वचनो की अवहेलना करके, लम्पट मोहिनी स्वच्छन्द कृत्रिम सज्जा किये यहां विचरण कर रही है जैसे किसी शृङ्गारोत्सव मण्डप मे लोगो का चित्त चुराने आई हुई हो श्वेतकर्ण भूषण पहने वह शफरी सी समुद्र के तट पर डोल रही है ॥१५ ॥

काचिद् वै प्रेमवार्ताऽध्ययनरतिकथोद्दीपितानङ्गभावा
तारुण्योन्मत्तचित्ता युवकजनरसोत्कण्ठिता चञ्चलाङ्गी ।
हस्ताभ्यां वीजयन्ती कठिन कुचयुगं सान्त्वयन्तीव मारम्
तीरस्थान् यून एषा स्मरतृषितदृशा वीक्षते वैजयन्ती ॥१६ ॥

कोई युवती प्रेम कथाओ के अध्ययन से उद्दीप्तकन्दर्पा, यौवनोन्मत्तमतिका, युवक संसर्ग तृषिता, चपला, हाथ मे उद्धृत पखे से कठिन स्तन युगल की उष्णता को शान्त करती हुई सी किवा अपनी प्रदीप्त स्मराग्नि को पुन· प्रज्वलित करती हुई सी इस समुद्र तट पर भ्रमण कर रही है और यहां पर टहलते हुए युवको को तृषित नयनो से निहार रही है ॥१६ ॥

दृष्ट्वाऽभीष्टं सहचरवरं लग्नमन्यप्रसङ्गे
काचित्तन्वी गमनमतिका दूरमेकान्तदेशम् ।
कृत्वा किञ्चिन्मिषमिह दृशा दत्तसंकेतभावा
यूना सार्धं व्रजति मिषतो वञ्चयन्ती वयस्यान् ॥१७॥

कोई तरुणी अपने वयस्यो के साथ घूमती हुई जब अपने अभीष्ट साथी को किसी अन्य प्रसङ्ग मे लगा हुआ देखती है तो उसके साथ एकान्त मे मिलने के लिये उत्कण्ठित हो जाती है। वह कोई बहाना बनाकर अपने साथ चल रहे साथियो को वञ्चिका देकर अपने सकेत से चलते हुए अपने अभीष्ट मित्र के साथ हो जाती है ॥१७॥

काचित्स्निग्धपिशंङ्ग-केश-ललिता धम्मिल-लग्नाम्बुजा
छत्रं चित्रपटं करेण मृदुना सम्भ्रामयन्ती चला ।
पीते कञ्चुककानने परिलसत्पक्वाम्रपीनस्तनी
वासन्तीव तनोति पीतवसनैः काचिद् वसन्तोत्सवम् ॥१८॥

कोई गौराङ्गना अपने सुनहरे केशो मे कमल को बाधे हाथ से रंगीला छाता घुमाती, अपने पीले कञ्चुक कानन मे पके आम्रफलो से स्तनों को छिपाये, अपने पीले परिधानो से वसन्त कामिनी की तरह वसन्तोत्सव प्रकट कर रही है ॥१८॥

काचिज्जूटकनद्धचारुकुसुमा ह्यश्वानना कामिनी,
जानु स्पर्शिविचित्रचीनवसना चञ्चन्नितम्बाशुंका ।
श्यामेनाम्बर-खण्डकेन पिहितानङ्गाभिरामाजिरा
पादत्राणनिबद्धचारुचरणा व्याहिण्डते चीनजा ॥१९॥

इधर कोई चीन देशीया, अश्वानना युवती, जूडे मे सुन्दर फूल सजाए घुटने तक कञ्चुक पहिने, चञ्चल नितम्बा, काला जांघिया पहिने जूतो से कसे पावो के कारण डगमगाती चाल से घूम रही है ॥१९॥

कस्याश्चिन्मसृणाम्बरं निपतितं स्कन्धात्प्रयान्त्याः प्रियम्
यूनाभ्युद्धृतमाशु तत्र चलता तस्या कटाक्षेच्छया ।
सापि प्रत्युपकार कारणधियाऽयच्छद्दृशोपस्करम्
तस्याः प्रीत्युपहारभावितमिदं जातं व्यथाकारकम् ॥२० ॥

किसी युवती का जाते-जाते उत्तरीय गिर पड़ा तो पास चल रहे युवक ने दौडकर उसे उठाकर, उसके कटाक्ष पात की कामना से उसे दे दिया। युवती ने भी कटाक्ष से उसे पुरस्कृत कर दिया। परन्तु यह प्रत्युपकार उस युवती के लिये व्यथा कारक बन गया ॥२० ॥

उत्सेधिस्तनमण्डलं नु सहसा छिन्ने निबन्धे मनाक्
जातं चोलक-निग्रहेऽपि चरतां यूनां दृशां गोचरम् ।
दृष्ट्वा क्षुब्धमहो मनोऽपि जलधेर्वीचीमिषैः सत्वरम्
मन्ये तत्परिरम्भोत्सुकमतिः संलक्ष्यते सागरः ॥२१ ॥

किसी भ्रमण करती युवती का कुचो की कठोरता के कारण कञ्चुकी का कवच टूट गया। उस बेचारी ने अपने आंचल से उन्हे दूसरो की दृष्टि से बचाने के लिये, ढांकने का पूरा प्रयत्न किया फिर भी वे चलते हुए युवको की दृष्टि से बचन पाये। उन्हे देख समुद्र का मन भी क्षुब्ध हो गया। मानो सागर भी अपनी तरङ्गो से उसका परिरम्भण पाने के लिये उछलता सा दिखाई पड रहा है ॥२१ ॥

काचित्तन्वी विमलवदना बद्धकौशेयशाटी,
जङ्घाकच्छद्विगुणितपटी कीर्णपाटीरगन्धा ।
हस्ते लीला-कमल-मृदुल-प्रोञ्छनं चालयन्ती
जूटीबन्धग्रथितकलिका राजते दाक्षिणात्या ॥२२ ॥

कोई दाक्षिणात्या तन्वंगी, लांग वाली साड़ी पहिने अपने शरीर मे लगे चन्दन की सौरभ फैलाती हुई, एक हाथ मे कमल लिये दूसरे मे रूमाल उठाए अपने जूडे मे बधी पुष्पवेणी से तटकी शोभा बढा रही है ॥२२ ॥

चीनांशुकं कापि प्रियं वसाना, तारुण्यगन्धं परितः किरन्ती ।
प्रयाति काचित् तरुणी नवीना समोहयन्तीव मनांसि यूनाम् ।।२३ ।।

कोई नवयुवती, स्निग्ध कौशेय वस्त्र पहिने, चारों ओर अपने तारुण्य सौरभ बिखेरती, तरुणों के मन को सम्मोहित करती हुई सी चल रही है ।।२३ ।।

काचिन्नवोढा नवशाटिकाढ्या, लावण्यरत्नं परिगोपयन्ती ।
पुनः पुनः पृष्ठमवेक्षमाणा, भीतेव तारुण्यहरात् प्रयाति ।।२४ ।।

कोई नवोढा अभिनव शाटिका पहिने, अपने लावण्य रत्न को वस्त्रों से छिपाती हुई, तारुण्य तस्करों से डरी हुई सी बार-बार पीछे मुड मुड़कर देखती हुई चल रही है ।।२४ ।।

कौमारमित्रस्य मुदे मतल्ली, प्रसाधनं क्रत्रिममादधाना ।
स्वभाव-रम्याणि निजाङ्गकानि, कृत्वाऽगता कापि विमूर्च्छितानि ।।२५ ।।

कोई श्रेष्ठ सुन्दरी, अपने कौमार मित्र की प्रसन्नता के लिये कृत्रिम प्रसाधनों से अपनी सजावट करके, अपनी स्वाभाविक सुन्दरता को मूर्च्छित करके यहां आई है ।।२५ ।।

सुवर्णशीर्षाभरणाभिरामा, नासासुवालीपरिमण्डितास्या ।
सरत्नकर्णाभरणा पयोधेस्तटेऽञ्चते कापि मरुस्थलीया ।।२६ ।।

इधर सिर पर सोने का बोर बांधे, नासिका मे सुन्दर बाली पहने, कान मे रत्न जटित कर्णा भरण धारण किये, कोई मरुस्थलीया सुन्दरी विहार कर रही है ।।२६ ।।

गलोलसच्चारुसुवर्णकण्ठी, वक्षोलसन्मौक्तिकहारिहारा ।
सत्कञ्चुकीनद्धपयोधरैषा, ग्राम्याप्यहो नागरिकाभिकाम्या ॥२७ ॥

गले मे सुन्दर सुवर्ण कण्ठी पहिने, गले मे सुन्दर मुक्ताहार धारण किये सुन्दर, कञ्चुकी से कुचो को निबद्ध किये, मरुस्थलीया ग्रामवासिनी भी नागरिको का मन मोह रही है ॥२७ ॥

काचिच्च सूक्ष्मावरणावगुण्ठा, स्फुटोदरा राजतशुभ्रकाञ्ची ।
रौप्याङ्गदा लोचननुन्नमीना, सौदामिनीवाञ्चति मेघलीना ॥२८ ॥

कोई मरुस्थलीया मीनाक्षी, पतले घूंघट मे मुखचन्द्र को छिपाए, अनावृत उदरा, चांदी की करघनी बाधे, रजत भूषणो से मेघो के बीच चमकती बिजली सी लग रही है ॥२८ ॥

मञ्जिष्ठरागाञ्चितहस्तिदन्त, - खणच्चलत्सद्वलयाभिरामा ।
स्वर्णाङ्गदाभासितबाहुसन्धिः, नग्नोदरा याति च कान्तमग्ना ॥२९ ॥

कोई राजस्थानी वामा मजीठ से रङ्गे खनखनाते, हाथी दन्त निर्मित चूडा पहिने, भुजाओ मे स्वर्ण निर्मित बाजू बंध बाधे, नग्नोदरा नागरी अपने कान्त की स्मृति मे मग्न होकर जा रही है ॥२९ ॥

सूक्ष्मावगुण्ठोल्लसदम्बुजाक्षी, स्मितोलसद्दाडिमबीजदन्ता ।
कांचीं क्वणन्तीषति कापि कान्ता, रसालवक्षोजभरावनम्रा ॥३० ॥

कोई कान्ता, पतले घूंघट से दृश्यमान नेत्र कमलो से कमनीय मुसकान मे खिलते दाड़िम से दशनो से शोभित वदना, रसाल से स्तनो के भार से झुकी हुई अपनी काञ्ची क्वणित करती हुई जा रही है ॥३० ॥

**मृणालबाहूच्चलनेऽतिदक्षा, भ्रमिभ्रमत्कञ्चुकजातवात्या ।
पादाङ्गुलीव्यावलनेऽतिपट्वी, नृत्यैर्मनो रञ्जयतीह काचित् ॥३१ ॥**

कोई नृत्याङ्गना, मृणाल सी बाहुओ को घुमाती, घूमर के घुमाव से आंधीमचाती पावो की गुलियो के बल से नृत्यकला कौशल दिखाती हुई लोगो को लुभा रही है ॥३१ ॥

**सरोजभ्राम्यद् भ्रमराभिरामम्, तारुण्य-लावण्य-रसाभिषिक्तम् ।
कटाक्षपातं मदिरेक्षणायाः करोति चित्तं स्मरबाणविद्धम् ॥३२ ॥**

कोई मदिरेक्षणा, कमल पर मण्डराते मधुकरो से सुन्दर, यौवन-सुषमा रस से सराबोर, कन्दर्प सायक समान अपने कटाक्षो से दर्शको के मन को घायल कर रही है ॥३२ ॥

**श्यामाम्बरावेष्टितगौरदेहा, ताम्बूल-शोणाधर-चारुदन्ता ।
लाक्षारसारञ्जितपाणिपद्मा, धनावृतेयं यवनीन्दुरेखा ॥३३ ॥**

कोई यवन सुन्दरी, अपने गौर कलेवर को स्निग्ध श्यामल देहावरण (बुर्का) मे छिपाये, ताम्बूल-चर्वण रञ्जित रदनो को झलकाती, कर-कमलो को मेहदी की लाली से सजाए बादलो मे छिपी चन्द्ररेखा सी लग रही थी ॥३३ ॥

**मदोन्मदायाः कमलाननायाः, गौरे कपोलेऽस्ति च चारुचिह्नम् ।
घनालकैः संवृतचारुवक्त्रम्, तिरस्करोतीन्दुमिवाभ्रवृत्तम् ॥३४ ॥**

किसी कमलानना के मद में चलायमान मदमस्त नयन, गोरे गालो पर दमकता काला चिह्न, घने केशों मे घिरा हुआ सुन्दर मुख, मेघो में ढके चन्दा की शोभा को भी मन्द कर रहा है ॥३४ ॥

इतश्च देश्या घृतयीशुधर्माः, श्यामा अपि व्यापृतगौरगर्वाः ।
आजानुना कञ्चुकवञ्चकेन, सिन्धोर्मनोहर्तुमिवोपयाताः ॥३५ ॥

इधर ईशुमतावलम्बिनी गौर धर्म गर्विता भारतीय श्यामाए, घुटनों तक लटकने वाले अपने श्वेत कञ्चुक से सिन्धु के मन को भी वञ्चित कर रही थी ॥३५ ॥

सिन्धोस्तटे क्रीड़नतत्परायाः, पांसौ पतन्त्याश्चलकञ्चुकायाः ।
कन्दर्पक्रीड़ांगणचारुभूमेः, त्रिकोणकच्छैव ररक्ष लज्जाम् ॥३६ ॥

सिन्धु तट पर अपने सहेलियो के साथ खेलती हुई किसी नवयुवती का परिधान कञ्चुक ऊपर उठ गया परन्तु सौभाग्य से उसका तरुण त्रिकोणावरण, कन्दर्प क्रीडांगण की लज्जा बचा गया ॥३६ ॥

उन्मुक्त कामाश्च फिरंगिवामाः, पयोधिपांसौ समुदं लुठन्त्यः ।
कान्तोपगूढाः सलिलं विशन्त्यः, प्रपश्यतां कौतुकमावहन्ति ॥३७ ॥

कही पर उन्मुक्तकामा फिरंगिभामाए समुद्र की रेत पर लौटती हुई, अपने कान्त से लिपटकर समुद्र की लहरों मे प्रवेश करती हुई दर्शको का कौतुक बढ़ा रही है ॥३७ ॥

कन्दर्पलीलामिव दर्शयन्त्यस्त्रप्यन्ति नो वारिधितीर्थभूमौ ।
दृष्ट्वेति केचिन्मनसा शपन्ति, सकौतुकं केऽप्यवलोकयन्ति ॥३८ ॥

समुद्रतट पर इन फिरगियो की निर्लज्ज कन्दर्प क्रीडा देखकर कुछ लोग मन ही मन उनकी निन्दा कर रहे हैं, तो कई लोग इस कौतुक को मचलते हुए देख रहे हैं ॥३८ ॥

गौराङ्गनास्पर्शविमूढचेताः ख्यातात्मगांभीर्यगुणोऽपि सिन्धुः ।
कामातुरोव्युच्छलवीचिहस्तैरालिङ्गनायातुरतां व्यनक्ति ॥३९ ॥

इन्हे देखकर ऐसा लगता है कि गंभीरता गुण की प्रसिद्धता पाने वाला समुद्र भी इन गौराङ्गनाओ का स्पर्श पाकर विमूढ हो गया है और कामातुर सा अपने तरङ्गकरो से उनका आलिङ्गन करने के लिये आतुर हो रहा है ॥३९ ॥

स्मराजिराच्छादनमात्रकच्छा, स्तनोद्धतिस्तम्भनबद्धवेष्टा ।
असंवृताङ्गैः सलिलं धुनन्ती, सोद्वेलयत्यम्बुधिधैर्यबन्धम् ॥४० ॥

केवल जाघिया मात्र अधोवस्त्र पहिने एव स्तनो पर पतली सी पट्टी बाधे नग्न शरीर से समुद्र के जल को उछालती हुई गौराङ्गना समुद्र के धैर्य को उद्वेलित करती सी प्रतीत हो रही है ॥४० ॥

स्पर्शोऽपि यस्या मृदुलाङ्गुलीनाम्, यूनां स्मरोद्दीपनमादधाति ।
आश्लेष्टुकामा सदनं प्रविष्टा, तरङ्गयेत् सा नु कथं न सिन्धुम् ॥४१ ॥

जिस स्मरातुरा कामिनी की मृदुल अगुलियो के स्पर्श से ही मनुष्य मे स्मरोद्दीपन हो जाता है वह यदि घर मे आकर समुद्र का आलिगन करे तो वह कैसे विचलित नही होगा ॥४१ ॥

इतस्तरुण्यो धृतसाधुवेशाः, पयोधिपूजाक्षतपुञ्जहस्ताः ।
विलोक्य नग्नाः सलिले निमग्नाः, स्मिताक्षतान् तासु विनिक्षिपन्ति ॥४२ ॥

इधर समुद्र की पूजा के लिये आई हुई सौम्य वेशधारिणी भारतीय महिलाए अक्षतो से समुद्र की अर्चना करती है और जब इन गौराङ्गनाओ को अर्धनग्न देखती है तो अपने स्मित के अक्षत भी उन पर फैकने लगती है ॥४२ ॥

शीर्षे लसन्मत्स्यकरण्डकायाः
श्रोण्यन्तराबद्ध-विशाल-शाट्याः ।
पीनं चलद् धीवर-कन्यकायाः
श्रोणीयुगं संयमिनो धुनीते ॥४३ ॥

इधर सिर पर मत्स्यकरण्ड उठाऐ, जघाओ के बीच साडी की लाग लगाए, चलती हुई धीवर कन्या के पीन नितम्ब सयमियो के मन को भी चलायमान कर रहे है ॥४३ ॥

श्यामापि तारुण्यमनोऽभिरामा,
समत्स्यगन्धापि च पुष्प गन्धा ।
उत्सेध्युरोजारुण-भालचन्द्रा
चेतोहरा धीवरकामिनीयम् ॥४४ ॥

यह श्यामल शरीरा तारुण्य के कारण श्यामा भी अभिरामा लगती है। मत्स्यगन्धा भी पुष्प गन्धा प्रतीत हो रही है उनके समुन्नत उरोज और भाल पर लगा चन्दा सा तिलक दर्शको के मन को मोहित कर रहा है ॥४४ ॥

श्यामामला कुन्दविकासिदन्ता
भास्वत्सुरत्नोज्ज्वलितास्यनासा ।
सुमोच्चयावेष्टित-केश-पाशा
तारुण्यभद्रा चरतीह मद्रा ॥४५ ॥

इधर कुन्द रदना, श्याम वदना, हीरक जटित नासा भरण-भूषिता, केश पाश मे पुष्प माला लटकाये चलती हुई मद्रासी कामिनी भी अपने तारुण्य की अरुणिमा से भद्रा लग रही है ॥४५ ॥

चूर्णप्रलेपामल-चारुवक्त्रा,
लाक्षारसाऽरञ्जितपल्लवोष्ठा ॥
पद्मेक्षणा पीनपयोधरैषा
वृक्षाश्रयं वाञ्छति कापि वल्ली ॥४६ ॥

इधर कोई सुरभित चूर्ण लिप्ताङ्गी, सुन्दरमुखी, लाक्षाराग से रञ्जित अधरो वाली, पीनपयोधरा, कमलनयनी, सुन्दर वल्लरी किसी तरुण-विटप का आश्रय ढूढ रही है ॥४६ ॥

अनावृतस्कन्धतटप्रदेशा
सिताम्बराबद्धकुच-प्रदेशा ।
नितम्बविम्बच्युत शटिकान्ता ।
भ्रान्तेव काचिद् भ्रमतीह कान्ता ॥४७ ॥

एक ओर अनावृत स्कन्ध प्रदेशा, श्वेत चोली मे स्तनो को बाधे, नितम्बो पर साडी लटकाए, भ्रान्त चिन्त सी कोई भामा भ्रमण कर रही है ॥४७ ॥

गौराङ्गनाऽन्या च नराम्बराढ्या,
पिशङ्गकेशा शुनकानुयाता ।
पीनं नितम्बं परिधूनयन्ती
दृष्टिं समाकर्षति तीरभाजाम् ॥४८ ॥

एक ओर भूरे बालो वाली, गौराङ्गना, पुरुष परिधान पहिने, शुनकानुयाता अपने पीन नितम्बो को मटकाती तीर पर भ्रमण करते रसिको की दृष्टि को आकृष्ट कर रही है ॥४८ ॥

काचिच्च साटोपशिरस्कशृङ्गा
मज्जा-मृदा-मेदुरतामुपेता ।
स्तन्यातुरोरोजभरं वहन्ती
प्रयाति पांसुं पदकैर्मृशन्ती ॥४९ ॥

कोई गौरवनिता बडे घमण्ड के साथ सिर पर टोप पहिने, मज्जा की मिट्टी से मोटापा बढाए, दूध के लिए आतुर स्तनो के भार को वहन करती हुई, अपने पावों से समुद्र की मिट्टी को मसलती हुई चल रही है ॥४९ ॥

वक्षोनिगूढं शुनकं लिशन्ती
उद्वेजिता कापि च बालवृन्दैः ।
निवारयन्ती मलिनाङ्ग-वेशान्
द्रुतं समुद्धृत्य करं प्रयाति ॥५० ॥

दूसरी ओर कोई फिरंगी युवती, अपनी छाती से पिल्ले को चिपकाये, बालको द्वारा चिढाने पर उद्विग्न भाव से मलिन वेशधारी भिखारी बालकों को पास आने से रोकती हुई, अपना एक हाथ ऊपर उठा कर द्रुत गति से भाग रही है ॥५० ॥

इतश्च भिक्षानिरता युवत्यः
क्लिन्नाम्बरा याचनदीनमुख्यः ।
गौराङ्गनाकौतुकमीक्ष्य तीरे
भवन्ति भिक्षाविरताः क्षणाय ॥५१ ॥

इधर कुछ भिक्षुक युवतिए भी, जीर्णशीर्ण वस्त्र पहिने, हाथ मे भीख का कटोरा लिये, इन गौराङ्गनाओ का कौतुक देखने के लिये कुछ समय के लिये भीख मांगना बन्द करके खड़ी है ॥५१ ॥

लावण्यतीर्थे पुलिनेऽत्र सिन्धोः
चौपाटिसंज्ञावति मोहमय्याः ।
आयान्ति रामा धृतचारुवेशाः,
लावण्यलीला कलनाय मन्ये ॥५२ ॥

बम्बई का यह सागरतटीय चौपाटी स्थल सायकाल मे एक सौन्दर्य सगम का तीर्थ बन जाता है। यहा पर विविध देशीय वेषधारिणी वनिताएं भ्रमणार्थ आती है उनका सौन्दर्य इस सागर मे जल क्रीडा करता प्रतीत होता है ॥५२ ॥

यथार्थसंज्ञा नगरी विशाला,
हालाहली मोहमयीव बाला ।
अत्राङ्गनानामपि कास्त्यवाच्या,
सौन्दर्यलीला-ललिता च माया ॥५३ ॥

वस्तुत यह विशाल नगरी मदभरी मोहमयी मोहिनीबाला है यहा की अगनाओ की लावण्यलीला ललिता माया भी अनिर्वचनीय है ॥५३ ॥

क्वैषा जड़ा परवती प्रकृतिः पुराणा,
क्वेयञ्च चेतनयुताऽङ्गविभाऽङ्गनानाम् ।
कुर्मः प्रजापतिसमा कवयः स्वमन्त्रैर्
हृद्यां युतिं नवनवां गुणगुम्फितेन ॥५४ ॥

कहा तो यह पराधीन, पुराणी, प्रकृति कहां यह चैतन्यमूर्ति सुन्दरियो के अङ्गो की शोभा, यह तो कवियो का कौशल है कि वे इन दोनो की जोड़ी को मन्त्र पूर्वक गुण ग्रन्थि का बन्धन करते हुए उन्हे नया-नया सुन्दर रूप देते रहते है ॥५४ ॥

अस्माकमत्रास्ति न चारभावः
न कामिनीकुण्ठितजारभावः
न चापि तारुण्यजमारभावः
नोऽस्त्यत्रसाहित्यविनोदभावः ॥५५ ॥

कवि न किसी की टोह मे लगे हुए गुप्तचर होते है, न किसी कामिनी के कुण्ठित जार होते है, न ही वे तारुण्य जनित विकार के ही शिकार होते है। वे तो कविता वनिता के साथ विहार करने वाले विनोदी साहित्यकार होते है ॥५५ ॥



मौनामृतम्

इतश्च सौन्दर्यसुधाब्धितीरे
काचित्कुमारी गिरिदेशवासा ।
सुवर्ण-शून्यापि सुवर्णरम्या
जहार यूनां चरतां मनांसि ॥१ ॥

एक ओर इस सौन्दर्य सागर के किनारे बैठी कोई पर्वतीया कुमारी यहां पर विहार करते तरुणौ का चित्त चुरा रही है जिसके शरीर पर कोई सुवर्ण का भूषण न होते हुए भी वह अपनी सुन्दरता से ही भूषित हो रही है ॥१ ॥

निधाय हस्ते चिबुकं निषण्णाम्
पयोधितीरे सिकताचितीड्ये ।
उपेत्य कश्चित् तरुणोऽरुणास्याम्
वीक्षावचोभिः समुवाच मौनम् ॥२ ॥

समुद्रतट पर बालू के ढेर पर, अपने हाथ मे अपनी ठोढी रखे बैठी, अरुणवदना उस तरुणी के पास कोई युवक आकर अपने नयनो की वाणी से से ही चुपचाप कहने लगा ॥२ ॥

तारुण्य रम्ये ! तरुणाभिकाम्ये !
किं वीक्षमाणाऽस्यनिमेषदृष्टया ।
शिरोरुहैश्चुम्बितचारुगण्डा
तनोषि चित्ते विविधान् विभावान् ॥३ ॥

अये । तारुण्यरमणीये । तरुणमनोहारिणि । तुम टकटकी लगाए किसे देख रही हो, तुम्हारे गण्डस्थल का चुम्बन करते केश, मेरे हृदय मे कई भाव पैदा कर रहे है ॥३ ॥

ग्राम्यापि लावण्यरुचासि रम्या ।
श्यामाभिरामा निगृहीतकामा ।
सम्पश्यतां चेतसि मौनमग्ना
सन्देहसन्दोहजनिं विधत्से ॥४ ॥

तुम बाह्य रूप से ग्राम्य होते हुए भी अपने लावण्य के कारण बहुत सुन्दर लग रही हो। तुम सुन्दरी श्यामा ने लगता है काम को भी पकड रखा है। मौन बैठी तुम्हे देखकर मेरे हृदय मे कई सन्देह उत्पन्न हो रहे है ॥४ ॥

व्याख्यानमेतत्तव मौननिष्ठम्
स्मरे विरूपाक्षभयं तनोति ।
नीलालकैः संवृतचारुवक्त्रा
छन्दोमयी त्वं ननु कासि बाले ! ॥५ ॥

तुम्हारे मौन मे छिपा वक्तव्य काम को भी शिव के भय से भयभीत कर रहा है। काले केशो मे ढके हुए तुम्हारे मुख से मै तुम्हारे रहस्य को पहचान नही पा रहा हूँ कहो बाले तुम कौन हो ? ॥५ ॥

आरूढवत्या नवयौवनाश्वे
महानहो ! ते सुषमाऽवलेपः ।
रूपासवापान-विमूर्च्छिताङ्गम्
विजेतुकामा किमु पुष्पचापम् ॥६ ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हे तरुणाई के घोडे पर सवार होने के कारण अपने रूप पर बडा गर्व हो गया है। क्या तुम अपने रूप के नशे में बेहोश पडे इस कुसुमायुध काम को अपने वश मे करना चाहती हो ? ॥६ ॥

तारुण्यपाथोधि-विमन्थनोत्थ-
पीयूषपूर्णस्तनकुम्भकाम्ये ।
दग्धं पुरा वा विषमेक्षणेन
कामं ! पुनर्जीवयितुं किमीहसे ॥७ ॥

कि वा अपने तारुण्य सागर के मन्थन से निकले अमृत को अपने स्तन कलशोमे भर कर, त्रिनेत्र महादेव के द्वारा भस्मीभूत कन्दर्प को पुन· जीवित करना चाहती हो ॥७ ॥

किं वञ्चिता गुरुजनैरनुरूप बन्धोः
किं वा छलेन रसिकस्य गतासि कोपम् ।
उद्वेजितासि किमुवा चपलेन यूना
कोपेक्षणेव परिभासि यतस्त्वमद्य ॥८ ॥

क्या तुम्हारे गुरुजनो ने तुम्हे अपने अभीष्ट साथी से वञ्चित किया है ! कि वा तुम्हारे प्रणयी ने तुम्हारे साथ धोखा तो नही किया ? जिससे तुम उद्विग्न प्रतीत होती हो। कि वा किसी मनचले युवा ने तुम्हारे साथ छेडछाड़ तो नही की है ? जिससे तुम कुपित नयना प्रतीत हो रही हो ॥८ ॥

नाहं त्वदीयं हृदयोपगूढम्
वेत्तुं प्रभुर्यौवनमुग्धचेताः ।
किं वासि रुष्टा किमुवासि तुष्टा
वितर्कणा मे तव वक्त्रमुद्रा ॥९ ॥

हे सुन्दरि । मै तो तुम्हारे यौवन पर मुग्ध हूँ अतः तुम्हारे हृदय मे छिपे भावो को जान नही पा रहा हूँ। तुम्हारी मुखमुद्रा से मै यह भी निश्चय नही कर पा रहा हूँ कि तुम रुष्ट हो या तुष्ट ॥९ ॥

मन्दस्मितैर्मधुसुधाकलशं निजास्यम्
उद्घाट्य देहि वचनामृतबिन्दुपानम् ।
मुग्धे ! कुरुष्व मम मानसशासनं भो !
मौनं विहाय चपलाक्षि-निरीक्षणेन ॥१० ॥

हे मोहिनि ! अपने मन्द हास्य द्वारा इस सुधापूर्ण मुख कलश को खोलो और अपने वचनामृत की बूंद का पान कराओ और मौन का परित्याग करती हुई, अपने चञ्चल दृष्टि पात से मेरे मन पर अपना शासन जमाओ ॥१० ॥

पीयूषमेतत् वदनेन्दुलभ्यम्
इमे चकोरास्तृषिताः पिबन्तु ।
मौने च मुक्ते विरमेत नूनम्
औत्सुक्यमेतत् तव दर्शकाणाम् ॥११ ॥

हे सुन्दरि । तुम्हारे मुख चन्द्र की सुधा के प्यासे इन चकोरो को तुम्हारी वाणी का अमृत पान करने दो । तुम्हारे मौन भग होने पर इन दर्शको की उत्कण्ठा भी शान्त हो जायगी ॥११ ॥

◆◆◆

अभिसारिका

काचिद् वामा मदनविवशा दत्तचित्ताऽभिसारे,
सन्देशं स्वं रहसि मिलितुं प्रापयित्वात्मनीनम् ।
गन्त्र्या चेयं द्रुतगतिकया प्रस्थिताऽभीष्टदेशम्
जातामार्गे विरतगतिका कुट्टिनी स्नेहशून्या ॥१ ॥

इस महानगरी मे अभिसारिकाएं भी कई रग दिखाती है—

कोई मदनविवशा अभिसारिका, अपने विटसहचर को एकान्त मे मिलने का सन्देश भेजकर अपनी तीव्र गतिका कार से अभीष्ट स्थान की ओर जा रही थी परन्तु गाड़ी मे तेल न होने के कारण वह स्नेह शून्या कुट्टिनी की तरह बीच मे ही रुक गई ॥१ ॥

भूयोभूयः प्रगतिकरणां कुञ्जिकां चालयन्ती
पादाघातैर्गमनदमने साहसं दर्शयन्ती ।
चक्रे यत्नं विविधविधिभिश्चालने लब्धदीक्षा
जाता चान्ते श्रमपरिहता फल्गुयत्ना कृशाङ्गी ॥२ ॥

वह बार-बार उसे पुनः गतिमान बनाने के लिये सब प्रकार के प्रयास कर रही थी, उसने कार चलाने की शिक्षा प्राप्त कर ली थी अत उसने उसे चालू करने के सर्वविध प्रयोग किये परन्तु समस्त प्रयत्नो के विफल होने से वह कृशाङ्गी थक कर बैठ गई ॥२ ॥

दृष्ट्वोपेतां रमणवसतिप्रापणेऽदृष्टबाधाम्,
ध्वान्ते भीता रहसिविकला स्विन्नगात्रा कुरङ्गी ।
कामाचारोदय-भय-युता वारयन्ती सहायम्
खिन्ना दुष्टां शपति शकटीं संकटे पातयन्तीम् ॥३ ॥

अपने प्रिय प्रदेश के पहुचने मे सहसा उपस्थित बाधा को देखकर वह अकेली अन्धेरे मे डर रही थी, शरीर पसीने से तर हो रहा था। वह किसी से सहायता भी नही लेना चाहती थी कि जिससे उसके अभिसार का भेद न खुल जाय। इस प्रकार वह व्याकुल होकर अपनी गाडी को ही कोस रही थी जिसने उसे इस संकट मे डाल रखा था ॥३ ॥

दग्धे ! मुग्धां दहसि रसिकासक्तचित्तां किमद्य
रुद्धां मार्गे तरुणतिमिरे प्रापयेत् को नु कान्तम् ।
धावन्त्येता रमणवसतिं चारुगात्रा रमण्यो
रत्युत्कण्ठा इव धृतमदा तीव्रवेगा शकट्यः ॥४ ॥

अरि । कलमुंहि ! रसिकासक्त मेरे चित्त को क्यो जला रही हो अब इस अन्धेरे मे मुझे प्रिय के पास कौन पहुंचायेगा? देख ये सुन्दर रमणिये सजधज कर अपने प्रियतम के घर की ओर भाग रही है ये भागती हुई मोटर कारे भी मन मे रत्युत्कण्ठा लिये हुई सी तीव्र गति से दौड रही है ॥४ ॥

इत्थं खिन्ना विलुलितकचान् गण्डतो वारयन्ती
स्रस्तां शाटीं कटितटगतां यत्नतो वेष्टयन्ती ।
बाष्पोच्छ्वासं विकटकलितं यन्त्रदंष्ट्राकरालं
गन्त्रीवक्त्रं मृदुनखजुषा पाणिना दारयन्ती ॥५ ॥

इस प्रकार खिन्न चित्ता वह अभिसारिका अपने बिखरे बालो को सवारती हुई, चालन प्रयास के कारण शिथिल पडी साड़ी को पुन कटितट पर दृढता से बांधती हुई, गरम सांसो को उगलती हुई, उस गन्त्री यक्षिणी के देष्ट्राकराल मुख को अपने कोमल हाथो से खोलने का प्रयास कर रही थी ॥५ ॥

स्वेदस्विन्ना श्वसनविकला मृष्टशृंगारभारा
भूयो भूयो द्रुतगतियुतान् वाहनान् वीक्षमाणा ।
दिष्ट्या कान्तः स्वयमुपगतो मोचयेत्संकटान्माम्
इत्युत्प्रेक्षाशमितहृदया संस्थिता यानपार्श्वे ॥६ ॥

शरीर पसीने से तर हो गया था, सासे फूल रही थी, सारी शृगार सज्जा मिट गई थी, मार्ग पर तीव्र गति से दौडते हुए वाहनो को बार-बार देख रही थी और मन ही मन सोच रही थी क्या अच्छा हो मेरा प्रणयी स्वय यहां आ जाए और मुझे इस सकट से बचाले, ऐसी कल्पना करती हुई वह हृदय को थाम कर गाडी के पास खड़ी हो गई ॥६ ॥

नानाशंकाऽऽकुलितहृदया दूरतो वीक्ष्य कञ्चित्
आयान्तं सा निशि नरतनुं धूम्रपाने प्रमत्तम् ।
स्वच्छन्दापि प्रकृतिकृपणा वेपमानेव भीत्या
तस्थावन्तः पिहितशकटीकाचपाशप्रसारा ॥७ ॥

इतने मे दूर से रात मे सिगरेट का धुआ निकालते हुए किसी पुरुष को देखकर उसका हृदय नाना प्रकार की आशंकाओ से भयभीत होने लगा और वह स्वच्छन्द होते हुए भी स्त्री स्वभाव की कायरता के कारण भय से कापती हुई गाड़ी के कांच बन्द करके अन्दर बैठ गई ॥७ ॥

स्निग्धे मुग्धा सुहृदि चपला मानिनी मानपात्रे,
चण्डे चण्डी द्रवति मधुरे स्नेहपीयूषधारा ।
वामे वामा वहति करुणां वत्सले कुक्षिजाते
नानारूपां जगति प्रमदां केवलं वेत्ति धाता ॥८ ॥

यह नारी कभी स्निग्धजन पर मुग्ध हो जाती है तो कभी मित्र के साथ चपल बन जाती है, कभी मानपात्र के आगे मानिनी बन जाती है, तो कभी भीषण के आगे चण्डी रूप धारण कर लेती है, तो कभी मधुर पुरुष के आगे स्नेह सुधा की धारा

सी बहने लगती है तो कभी टेढे के साथ टेढी तथा पुत्र के आगे वात्सल्य मूर्ति बन जाती है । इस नारी के अनेक रूप है जिसे केवल विधाता ही जानता है ॥८ ॥

नेदीभूतं कपटवसनं धूम्रपानानुबन्धं
ज्ञात्वा कान्तं गतिपरिचितं स्पष्टवक्त्रावभासम् ।
हृष्टा दिष्ट्या फलितकलिता वीक्षमाणा सतृष्णम्
लेभेऽलभ्यं रहसि मुदिता सा तमिस्त्राप्रसादम् ॥९ ॥

भेष बदल कर आये, सिगरेट पान करते पुरुष को जब समीप आने पर देखा तो वह परिचित कान्त लगा, जिसके आने की वह कल्पना कर रही थी, वस्तुत उसके सारे प्रयास सफल हो गये उसे तो, इस एकान्त स्थान मे रात्रि का प्रसाद मिल गया ॥९ ॥

इत्थं प्राप्ते प्रणयिनि जने वीतभीतिप्रपञ्चा
त्यक्त्वा गन्त्रीं विकलगतिकां वञ्चिकामध्वमध्ये ।
आरुह्यैषा रसिकशकटीं कृष्णकाचावगुण्ठाम्
जाताऽदृश्या चपलगतिका चञ्चलेवाऽभ्रलीना ॥१० ॥

इस प्रकार अपने प्रियजन के मिलने पर उसका सारा भय हट गया । वह मार्ग मे धोखा देने वाली गतिहीन गाड़ी को वही पर छोड़कर, अपने प्रेमी की काले कांच से ढकी गाडी में सवार होकर आकाश मे बिजली के समान वहां से ओझल हो गई ॥१० ॥



विवशाः विरहिणः

कश्चिन्मुग्धो तृषित मधुपो लुप्तलावण्यभावः
आशाबन्धे प्रणयकलिते खण्डिते दैवयोगात् ।
एकान्तस्थो जलधिसिकतां मर्दयन् मूढचेताः
धातारं वै शपति विवशो संस्मरन् वीतरागान् ॥१ ॥

इधर कोई प्यासा मधुप, संयोगवश प्रणय बन्धन मे बाधा जाने पर निराशा लिये, एकान्त मे समुद्र की धूल मसलता हुआ बैठा है उसे इस सौन्दर्य संग मे कोई रुचि नही है । वह तो विवशतावश प्रिया के न मिलने पर उसके साथ पूर्व मे घटित अपने प्रणय प्रसगो को याद करता हुआ इस स्थिति के लिये विधाता को ही कोस रहा है ॥१ ॥

काचित्तन्वी प्रणयसुभगे खण्डिते योगसूत्रे
दूरं याते प्रियतमजने सङ्गमोत्सुक्यपूर्णान् ।
प्रीत्युत्सेकान् हृदयजलधेर्वीचिभिर्भावयन्ती
आत्मानं वै कथयति रुजं स्वात्मनो निश्वसन्ती ॥२ ॥

उधर कोई प्रणयवञ्चिता कृशांगी अपने सुन्दर प्रणय योगसूत्र के खण्डित होने पर एवं अपने प्रणयी के कही दूर चले जाने पर खिन्न हुई, सागर की उठती हुई लहरो के साथ, उमडते हुए उत्कण्ठा भरे अपने पूर्व प्रणय प्रसंगो का स्मरण करती हुई उसासे भरती अपने को ही अपने हृदय की पीड़ा सुना रही है ॥२ ॥

नीतास्ते बहवो मनोद्रवकरा धन्याः प्रतीक्षाक्षणाः
येष्वन्तर्वहति स्म कापि मधुरा संवेदनावाहिनी ।
दिष्ट्या ते तड़िदस्थिरं समभवत् पुण्येन सदर्शनम्
हा हा ! तन्नहि जीवने सुखमहो भूयः समायास्यति ॥३ ॥

हे प्रिय ! जीवन के वे बीते प्रतीक्षा के क्षण कितने सुहावने थे जब इस हृदय मे संवेदना की मधुर सरिता बहा करती थी सौभाग्य से उन क्षणो मे तुम्हारा विद्युत् सा क्षणिक दर्शन भी बड़ा सुखप्रद लगता था। हे प्रिय ! क्या वे तुम्हारे दर्शन के सुखदायक क्षण पुनः इस जीवन मे आ पायेगे ? ॥३ ॥

वक्तव्यं महदस्ति मे, तव पुनः स्थातुं न वेला क्षणम्
कस्मै तत् कथयामि कोऽपि भुवने श्रोता न भुक्तव्यथः ।
कच्चित्ते चिरसम्भृतां प्रियकथां प्रेमाश्रुसिक्तात्मनो,
वेला मे विनिवेदितुं रहसि हा ! भूयः समायास्यति ॥४ ॥

हे प्रिय ! मुझे तुमसे कहना तो बहुत कुछ है परन्तु तुम्हे रुकने का समय कहा ? मै अपनी व्यथा किसे कहूँ । यहां कोई भुक्तभोगी श्रोता भी तो नही मिलता । क्या फिर कभी प्रेमाश्रु से सने मन की चिरसञ्चित सवेदना को एकान्त मे सुनाने का अवसर मिल पायेगा ? ॥४ ॥

स्निग्धं नूपुरशिञ्जितं श्रुतिसुखं जातं कुटीरे मम,
दुर्दैवान्न परं त्वदीयविरहव्यग्रात्मनाऽकर्णितम् ।
दीना तापसकन्यका, नहि अरे दुर्वाससा भूयताम्,
यातं तद् वद मित्र ! मे श्रुति सुखं भूयः समायास्यति ? ॥५ ॥

हे प्रिय ! मैने सुना है कि तुम्हारे कर्ण प्रिय नूपुरो की ध्वनि मेरी कुटी मे भी हुई थी परन्तु दुर्भाग्यवश विरह व्यथा व्याकुल मन स्थिति के कारण मै उसे

सुन नही पाई थी। हे प्रिय ! मेरी तो दशा उस दीन तपस्वी कन्या शकुन्तलासी है तुम तो दुर्वासा मत बनो। कहो, क्या कभी पुन वह मधुर ध्वनि सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा? ॥५ ॥

त्वं जानासि यदा मदीयमखिलं वृत्तं तदोक्तेन किम्,
चित्ते मे विरहानलो ज्वलनयं प्राणा अमी व्याकुलाः
नायातः प्रिय ! बोधितोऽपि नु वरम् तत् साम्प्रतं कथ्यताम्
सो धन्यो मम जीवने ननु कदा भूयः समायास्यति ॥६ ॥

हे प्रिय ! तुम मेरी सारी स्थिति से सुपरिचित हो अत उसे पुन दोहराने से क्या? तुम जानते ही हो हृदय मे विरह की आग जल रही है। प्राण व्याकुल है। यह ठीक है कि मेरे बुलाने पर भी तुम नही आ पाये, परन्तु अब बताओ वह धन्य घड़ी पुन मेरे जीवन मे कब आयेगी? ॥६ ॥

यात्येवं क्षणमेकमत्र युगवज्जानासि नो निर्दय !,
यातस्त्वं विजनं विहाय नलवत् प्रागेव निद्राच्युतेः ।
किं श्लिष्टा प्रियकामिनी शशिकला किं वा प्रभा ज्योतिषाम्
किन्नैषा मधुमासपुण्यघटिका भूयः समायास्यति ॥७ ॥

हे प्रिय ! तुम बड़े निर्दयी हो। जानते नही तुम्हारे बिना मेरा एक-एक क्षण युग की तरह बीत रहा है। तुम तो नीद खुलने के पहिले ही नल की तरह मुझे छोडकर चले गये। क्या प्रियकामिनी शशिकला का संग मिल गया या फिर तारो की प्रभा मे ही खो गये। क्या वह वसन्त की पुण्य घडी फिर कभी नही आयेगी? ॥७ ॥

कष्टे जीवितपक्षमस्ति विकलं बन्दीकृता सारिका
आकाशोत्पने समुत्सुकमनाः कष्टं स्थितं द्वारि हा ! ।
नो दातुं यदि शक्यते वियति मे कालो विहर्तुं सुखम्
तर्ह्येतन्मृदु पक्षमेव नु कथं नो छिद्यते साम्प्रतम् ॥८ ॥

क्या कहूँ? जीवन कष्ट मे छटपटा रहा है। पिजरे मे बन्दी बनी मैना, आकाश मे उडने की चाह लिये, बडी उत्सुकता से द्वार पर खडी है परन्तु द्वार पर सकट है। यदि तुम मुझे सुखपूर्वक आकाश मे उडने नही देना चाहते, तो फिर मेरे पंख ही क्यो नही काट डालते? ॥८ ॥

सामर्थ्यं यदि नास्ति वाञ्छितफलं दातुं ह्यभिन्नात्मने,
पाषाण-प्रतिम ! प्रयच्छ वचनं, किं ते प्रभुत्वं गतम् ।
पीयूषं यदि नास्ति शुभ्रचषके हर्तुं पिपासां पराम्
तर्ह्येतद् विषमेव देहि विषमं प्राणान्नु हर्तुं द्रुतम् ॥९ ॥

हे प्रिय ! तुम बड़े कठोर हो। यदि तुम अपनी अभिन्नात्मा को अभीष्ट फल देने मे असमर्थ हो तो, कहते क्यो नही कि "मेरा प्रभुत्व चला गया है।" यदि प्यास बुझाने के लिये तुम्हारे पास अमृत नही है तो प्राणहारी विष ही क्यो नही दे डालते? ॥९ ॥

औत्सुक्यं कुमुदस्य मानससरोलास्येऽपि चेद् वार्यते
मान्द्यं तेऽनिलशीतलामलकरस्पर्शप्रदानेऽपि चेत् ।
नो दातुं यदि शक्यते शशिकला शीतांशुभिर्जीवनम्
चण्डांशोः कठिनैः करैः प्रियमिदं भस्मीकुरु प्राणितम् ॥१० ॥

हे प्रिय ! यदि तुम इस कुमुदिनी की मानसरोवर मे विहार की कामना को ही कुण्ठित करना चाहते हो, किवा अपने शीतल कर स्पर्श मे ही कृपणता है, किवा, चन्द्र की शीतल किरणो से जीवन ही नही देना चाहते तो फिर सूर्य की कठोर किरणों से इसे भस्म ही क्यो नही करते? ॥१० ॥

विरहिणोभावाः—

गोष्ठे गोमय लिप्तचारुचरणां क्लिन्नां श्रमोद्‌बन्धनैः,
प्रोद्‌भूतां प्रणयालवालसुभगे स्नेहाम्बुसिक्ताङ्गणे ।
शुष्यन्तीं विकलां हिरण्यलतिकां मन्दे मरौ निर्जले
दृष्ट्वा हा ! विवशस्य मानसमिदं नित्यं शुचा दूयते ॥११ ॥

जो स्वर्णलता प्रेम की क्यारी से सुन्दर स्नेह सिक्त प्रागण मे लहलहाती रहती थी, वह आज निर्जल मरुस्थल मे सूख रही है । उस श्रम बन्धन मे मुर्झाई हुई उस लतिका के गोमय लिप्त चरणो को देखकर विवश मन बडा दुखी हो रहा है ॥११ ॥

एषोद्यानभवा रसालरसिका रागोत्सुका कोकिला
काकानां कटुकण्ठकर्कशकुले क्षिप्ता भ्रशं खिद्यति ।
मृद्वीयं मधुमासलास्यविरहे मूर्च्छत्यहो पद्मिनी
किं कुर्मो विवशा विहाय शपनम् धातुर्मुखे भूयशः ॥१२ ॥

आज यह वाटिका विहारिणी, आम्र रसिका, रागोत्कण्ठिता कोकिला कड़वे कण्ठ वाले कौओ के बीच मे दु खी हो रही है । यह मृदुल विग्रहा पद्मिनी मधुमास के विरह मे मुर्झा रही है । क्या करें विधाता को कोसने के सिवा हमारे पास कोई चारा नही ॥१२ ॥

कारागारसमं तदस्ति हृदयं प्रेम्णा न यल्लेपितम्
दीप्तिं नो तनुते च यत्र सततं स्नेहप्रदीपद्युतिः ।
सिक्तं यच्च न विप्रयोगमधुरैर्नेत्राम्बुधाराकणैः
यस्मिन्नास्ति परानुरागमधुरा प्रेष्ठस्य मूर्तिः प्रिया ॥१३ ॥

वस्तुत वह हृदय तो कारागृह ही है जो प्रेमसुधा से लिप्त नही है तथा जिसके प्रागण को स्नेह दीपक के प्रकाश का सौभाग्य प्राप्त नही है एव जो विरह जनित प्रेमाश्रुओ से सीचा नही गया है तथा जिसमे प्रणय पोषिता प्रिय की प्रतिमा विराजमान नही है ॥१३ ॥

मूढास्ते निगदन्ति दुर्लभतमां प्रीतिं तु ये शाश्वतीम्
ते सत्यं परिवञ्चिताः शिशुजनैर्मर्मानभिज्ञैः जडैः ।
सा नूनं प्रणयाब्धिमन्थनलसत्पीयूषसिक्तामला
चित्ते स्नेहपयोधिलोललहरीसिंहासने राजते ॥१४ ॥

जो शाश्वत प्रीति को दुर्लभ कहते है वे सचमुच मूर्ख है। वे मर्मानभिज्ञ मूर्ख शिशुजनो से वञ्चित से लगते है। वस्तुत. यह तो प्रणय सागर के मन्थन से निकले अमृत से सिक्त, निर्मल मूर्ति, स्नेह सागर की लहरो मे झुमते हुए हृदयपीठ पर निरन्तर विराजमान रहती है ॥१४ ॥

सिक्ता स्नेहजलैर्हि विन्दति मुदं प्रीति-प्रिया वल्लरी,
सा संपुष्यति सानुकूलविटपाश्लेषेण सम्भाविता ।
नेयं हृष्यति राजते न कुसुमैर्नोवा दलैर्दृप्यति,
यावन्नो प्रणय-प्रगाढ-सुखद-श्लेषैर्मुदा भाव्यते ॥१५ ॥

प्रणय वल्लरी स्नेहजल का सिञ्चन पाकर ही प्रसन्न होती है। चारो ओर लहलहाते वृक्षो की परिधि मे ही वह फलती फूलती है। केवल पत्तों और फूलो से ही वह आनन्दितनही होती न वह इनसे गर्व का ही अनुभव करती है, जब तक उसे प्रणय प्रगाढ आश्लेष का सुख प्राप्त न हो ॥१५ ॥

पूजार्थं चिरमुत्सुकस्य विमतेः सम्भारपाणेर्मुदा
दुर्दैवात् स्खलितो जवेन विषमे मार्गे पदो धावतः ।
अर्घ्यं यत्तव पूजनाय रचितं भ्रष्टं प्रमादादहो,
रिक्तं तत्करवाणि किन्तु विधिना पुण्येन हा वञ्चितः ॥१६ ॥

मैं अपने दुर्भाग्य के विषय मे क्या कहूँ ? चिरकाल से अर्चन की उत्कण्ठा लिये, पूजा सामग्री का पात्र उठाये द्रुतगति से जा रहा था कि सहसा पाव फिसल गया और अर्चना के लिये रचा गया अर्घ्य ही बिखर गया । क्या करू आज खाली पूजा पात्र लिये खडा हूँ विधाता ने मुझे इस पुण्य से भी वञ्चित कर दिया है ॥१६ ॥

लब्धा या प्रियपूजनोत्सवघटिस्तप्त्वा तपो हा चिरम्
याता सा लघुना प्रमादकलितेनापश्यतो भ्रष्टताम् ।
स्त्रस्तं दीनशिरोमणेर्मम करात् रत्नस्य भाण्डं जले
किं जीवानि पतानि वाद्य दहने दैवेन हा वञ्चितः ॥१७ ॥

हाय ! बडी तपस्या के बाद तुम्हारे पूजन की घडी हाथ लगी थी परन्तु दुर्भाग्यवश थोडे से प्रमाद के कारण वह हाथ से निकल गई मुझ अकिंचन का रत्नभरा पात्र जल मे गिर गया। दुर्भाग्य का मारा मैं क्या करूं । जीऊं या आग मे कूद पडूं ॥१७ ॥

मा भूया व्यथया विषणा हृदयो माऽशास्तु ते खण्डिता
कष्टै दींप्यति कार्यमत्र मुनयः पुण्याः प्रमाणं पुरः ।
नैकेन स्खलितेन नश्यति तपस्तप्तं चिरायेति वै
आश्वस्तं कुरुते न कोऽपि हृदयं मेऽ द्योपदेशामृतैः ॥१८ ॥

"अरे ! मित्र ! इस घटना से इतने निराश मत हो जाओ, आशा को टूटी हुई मत समझो । कष्टों से ही कार्य चमकता है । इसके लिये तपस्वी मुनियो का उदाहरण तुम्हारे सामने है । एक प्रमाद से सारा सञ्चित पुण्य नष्ट नही होता" इस प्रकार के आश्वासन भरे उपदेशो से भी तो कोई मुझे सहारा नही देता ॥१८ ॥

कामं भूयाद् विकटवडवापावकस्तेऽवरोधो
झञ्झावातः प्रलयकरकावर्षणै र्विघ्नदो वा ।
प्रेष्ठस्तेऽयं वसति विषमे प्रेमपाथोधिपारे
दुर्लंघ्योऽयं त्वयि नु विरते केन वा लङ्घनीयः ॥१९ ॥

मानो मुझे कोई कह रहा है—अरे ! मित्र ! चाहे विकट वड़वाग्नि का अवरोध क्यो न हो, ओलो की वर्षा से भरा प्रलय का तूफान क्यो न बाधक बने, तुम आशा मत छोडो । तुम्हारा प्रियतम उस प्रेमसागर के पार रहता है । यदि तुम निराश हो जाओगे तो इस सागर को कौन पार करेगा ॥१९ ॥

पारोक्ष्यतामुपगतोऽपि दृगङ्कितोऽसि ।
दूरंगतोऽपि सततं हृदये स्थितोऽसि
जानासि तत्तु सकलं हृदयैकतन्तो ! ।
दुर्दैवजा विवशता न ददाति योगम् ॥२० ॥

हे प्रिय ! तुम परोक्ष होते हुए भी ऑखो मे छाए हुए हो, दूर रहते हुए भी निरन्तर हृदय मे बसे रहते हो, तुम सब कुछ जानते ही हो कि हमारे हृदय के तार किस प्रकार जुड़े हुए है । केवल दुर्दैव के कारण ही हम मिलने को विवश है ॥२० ॥

स्वर्गीयाऽमृतवाहिनी मधुरता सारं प्रसारो मुदाम्
स्निग्ध-स्मेरमुखाम्बुजोद्‌गतमिदं सुस्वादु सन्माक्षिकम् ।
नूनं कर्णपुटामृतं सुभणितं सारस्वतं वैभवम्
अद्यापि श्रुतिगोचरान्न गलितं यातेऽपि दूरं सखे ! ॥२१ ॥

हे सखे ! चाहे तुम कितने ही दूर क्यो न चले गये हो परन्तु तुम्हारी मधुरवाणी मेरे कानो मे निरन्तर गूजती रहती है। वस्तुतः तुम्हारी यह वाणी तो स्वर्गगा की मधुरता का सार थी, प्रसन्नता का प्रसार थी स्नेह भरे खिले हुए मुख कमल से निकला मधु था ॥२१ ॥

यतस्तवोष्मामृदुपुष्पलाभः
ततोऽद्य मे ते स्मृतिशूलवेधः ।
जागर्ति नो सा मधुराद्य गीतिः
कुर्यान्नु या नीरवताऽवसानम् ॥२२ ॥

हे सखे । जहा तुम्हारी मृदु उष्मा से फूल खिले थे वही आज स्मृति शूल निकल रहे है। आज नीरवता मिटाने वाले वे तुम्हारे मधुर गीत नही हैं ॥२२ ॥

सार्धं त्वसासीड्डयीतुं समीहा
जातः परं हा मम पक्ष-पातः ।
स्मृति-स्थिता कृन्तति संगवेला
विरज्यते नो यतितेऽपि चित्तम् ॥२३ ॥

हे मित्र । तुम्हारे साथ उडने की बडी इच्छा थी, परन्तु क्या करूं दुर्भाग्य ने मेरे पंख ही काट डाले। स्मृति मे बसी हुई तुम्हारी वह मिलन की घड़ी हृदयको व्यथित कर रही है जो प्रयत्न करने पर भी दूर नही हटती ॥२३ ॥

त्वत्सङ्गमौत्सुक्यतृषावसादा,
वियोगदावानलतीव्रतापा ।
एकाकिनी दारुणविप्रयोगं
कथं सहेऽहं वद चित्तबन्धो ! ॥२४ ॥

हे हृदय बन्धु ! आज मै अकेली हूँ। तुम्हारे मिलन की प्यास से व्याकुल, वियोग वह्नि के ताप से सन्तप्त हूँ। तुम ही कहो ! मै इस दारुण वियोग को कैसे सहन करूँ ? ॥२४ ॥

समीहमानापि धरोपगूढम्,
लब्धुं न शक्ता विटपस्य शाखा ।
करोति धैर्यं विवशा स्वचित्ते,
समर्प्य पुष्पाणि फलानि नूनम् ॥२५ ॥

यह बेचारी वृक्ष शाखा क्या करे वह तो प्रयत्न करने पर भी भूतल के स्पर्श का सुख पा नही सकती। विवशता की मारी वह बेचारी तो अपने फल और फूल समर्पित करके ही मन मे धैर्य धारण कर लेती है ॥२५ ॥

आघ्रातु कामोऽपिन पारयत्यसौ
लब्धुं द्विरेफः कलिकाङ्गगन्धम् ।
शून्येऽस्ति मौना कलिकापि दीना
हतानि नूनं मधुगुञ्जितानि ॥२६ ॥

क्या करे बेचारा भौरा कलिका के अङ्गो की सौरभ पाना चाहते हुए भी उसे सूंघ नही पा रहा है। यह विवशता की मारी कली भी शून्य मे मौन पड़ी हुई है। आज मधु और गुञ्जन की मृत्यु हो गई सी लगती है ॥२६ ॥

क्वेयं तनुर्मधुरसङ्गमहेतुभूता
क्वेदं मनो विवशता विकलं वियोगे
क्वैषाभिलाषविततिः प्रबला च चित्ते
केनापि रुद्धगतिका भजते निराशाम् ॥२७॥

कहा यह मधुर सङ्गम के लिये व्याकुल कोमल काया कहा वियोग मे व्यथित मन, कहा मन मे मिलन की प्रबल अभिलाषा। ऐसा लगता है मानो मिलन मे बाधक बना कोई अदृष्ट है जो इन सब आशाओ पर पानी फेर रहा है ॥२७॥

दृष्टुं न शक्ता जलवीचयोऽमी
स्थितं विधुं मानसमन्दिरेऽपि।
अतोऽत्यधीरा प्रियसङ्गमाय
प्रोल्लंघ्य तीरं परितः प्रयान्ति ॥२८॥

क्या करे ये जल की तरङ्गे भी अपने मन मन्दिर मे बैठे चन्द्रमा को पाना चाहती है पर पा नही पाती इसलिये अधीर होकर प्रिय सगम के लिये तीर को लांघ कर बाहर जा रही है ॥२८॥

चिरञ्जपन्ती जलबिन्दुमेषा,
भाग्येन हीना विवशा पिपासा।
स्थिता परं नैव कणं कदापि
शुष्काधरा लब्धवतीति चिन्ता ॥२९॥

क्या कहे यह भाग्यहीनपिपासा भी चिरकाल से पानी की बून्द की माला जपती रहती है परन्तु दुर्भाग्यवश उसे कभी भी बून्द न मिली। आज भी उसके होठ पानी बिना सूखे पड़े है यही चिन्ता का विषय है ॥२९॥

केकीकुलं वै कुरुतेऽत्र केकाम्
इतस्तृषार्ताः खलु चातकाश्च ।
क्वैषां पिपासा विषमा क्व चायं
पयोधरो निष्ठुरवंशजातः ॥३० ॥

एक ओर, मेघो के लिए तरसते मोर केकानाद कर रहे है दूसरी ओर प्यासे चातक आकाश की ओर टकटकी लगाए बैठे है । एक ओर कितनी प्रबल पिपासा है और दूसरी ओर कितना निष्ठुर है मेघ जो उनकी ओर देखता ही नही ॥३० ॥

यातं वयो मे स्मरणे त्वदीये
लब्धाः परं नो प्रणयप्रसङ्गाः ।
अथापि याचे जननान्तरेऽपि
त्वय्येव भूयात् प्रणयानुबन्धः ॥३१ ॥

हे प्रिय ! यद्यपि तुम्हे याद करते करते उम्र बीत गई पर प्रणय की एक पल भी हाथ न लगी । फिर भी मुझे पूर्ण विश्वास है कि दूसरे जन्म मे तो तुम्हारा प्रेम अवश्य ही प्राप्त होगा ॥३१ ॥

जानामि धर्मं मनुनोपदिष्टम्
कुलावगीतिर्विदिता च सम्यक् ।
ध्येयच्च्युतौ वेद्मि विगर्हितानि
तथापि नात्मा प्रणयादपेति ॥३२ ॥

हे प्रिय ! मै जानता हूँ कि तुम्हारी प्रणयाभिलाषा से मनुनिर्दिष्ट धर्म का भग होगा, कुल मे निन्दा होगी, ध्येय भ्रष्ट हो जाने के कारण लोगों मे तिरस्कार होगा फिर भी न जाने क्यो हे प्रणय बन्धु ! मेरी आत्मा तुम्हारे प्रेम का पीछा नही छोडती ॥३२ ॥

लोकापवादो भवितेति जाने
मन्येऽनुकूलाः गुरवोऽपि मे नो ।
परं दृढो मे प्रणयानुबन्धो
जहाति चित्तं नहि यत्नतोऽपि ॥३३ ॥

हे प्रिय बन्धु ! मै यह भी जानता हूँ कि इस प्रणय के कारण लोग मेरी निन्दा करेंगे, गुरुजन विरोध करेंगे । परन्तु क्या करू मेरा प्रणय बन्धन इतना दृढ है कि प्रयत्न करने पर भी मेरे मन को नही छोडता ॥३३ ॥

अहो कियन्तः प्रणये प्रबद्धाः
प्राणान् जगत्यां विजहुर्वियोगे ।
त एव जानन्ति तदीयरागं
प्रसूतिपीड़ां नहि वेति बन्ध्या ॥३४ ॥

संसार मे कितने ही लोगो ने इस प्रेम के पाश मे पडकर वियोग मे अपने प्राण दे डाले । उनके प्रेम को तो वे ही जानते हैं । वन्ध्या प्रसूति पीड़ा को नही जानती ॥३४ ॥

अहो विचित्रः खलु रागबन्धः
जातः सकृन्नो विजहाति भूमिम् ।
वहन्त्यजस्रं भुवि तस्य धारा
पयोधिरूपं भजतेऽत्र चित्रम् ॥३५ ॥

प्रेम का बन्धन भी बडा विचित्र है एक बार हो जाने पर वह उस स्थान को नही छोड़ता । आश्चर्य है कि इस बहती हुई प्रेमधारा ने पृथ्वी पर सागर का रूप धारण कर लिया है । इसलिये यह प्रेमसागर कहला रहा है ॥३५ ॥



वैराग्य संवेदना

कश्चिच्चात्र सिताम्बरावृततनुर्लूनालकः श्रावकः
वर्षीयान् विपणाधिपोऽपि जलधेर्गाम्भीर्यमुद्भावयन् ।
मत्वा भोगविलासं सौख्यचलतां वैराग्यभाग्योदयात्
पार्श्वस्थं नवदीक्षितं हि जरठं ज्ञानं दिशन् तिष्ठति ॥१ ॥

यही पर कोई श्वेत वस्त्र लपेटे, वयोवृद्ध व्यापारी, मुण्डित केशो वाले साधु के वेष मे समुद्र के गाम्भीर्य पर दृष्टि डाले, वैराग्य भाव के कारण भोग विलास के सुख को अस्थिर मानकर अपने पास मे बैठे हुए नवदीक्षित वृद्ध को ज्ञानोपदेश करता हुआ बैठा है ॥१ ॥

पश्यैते चलयौवनोन्मदजुषो मूढा विलासे रताः,
सोत्कण्ठं जलकेलिकर्मनिरतान् पश्यन्ति गौरानिमान् ।
नग्नाश्चापि विलोक्य गौरवनिता रत्युत्सवं मन्वते,
गाम्भीर्यं न विलोकयन्ति जलधेर्वीचीविलासे रताः ॥२ ॥

देखो ! ये विलासवृत्ति मे लगे हुए मूर्ख इस चञ्चल यौवन पर ही उन्मत्त हो रहे है । जलक्रीडा करते हुए इन गोरो को बड़े चाव से देख रहे है तथा नग्न गोरवनिताओ को देखकर मन ही मन मचलते रहते है, ये विलासी लोग

समुद्र की लहरो के विलास को ही देखते है उसके गांभीर्य की ओर दृष्टि नही डालते ॥२ ॥

एभिर्मोहमयी विलासनगरी भोगाश्रया भाव्यते
नैषां कामकलापलोडितधियां बोधाश्रमे विश्रमः ।
पीत्वा यस्य पयोऽमृतं तनुरियं तारुण्यमालम्बते
वीक्षन्तेऽत्र तमेव दूषितदृशा वक्षोजमेते जड़ाः ॥३ ॥

ये लोग ही इस मोहमयी नगरी को भोगवती विलास नगरी समझते है। काम-कलाप से आलोडित बुद्धि वाले ये लोग ज्ञानोपदेश देने वाले आश्रमो मे नही जाते। जिसके का कारण दूषित दृष्टि वाले ये लोग, जिस स्तन का अमृतपान कर उनका यह शरीर समझबूझ के योग्य बना है उसी स्तन को ये मूर्ख बुरी नजर से देखते है ॥३ ॥

दृष्टं स्वीयमपि व्यवाय-निरतं भाव ! त्वया जीवनम्,
वीतं तत्सकलं कलङ्ककलुषं सपश्यतस्ते पुरः ।
एताभिश्चलकुट्टिनीभिरखिलं पुण्यं निपीतञ्च ते
एतेऽपूर्णविलासमग्नमनसो नोऽञ्चन्ति पूर्णे रतिम् ॥४ ॥

देखो भाई, तुमने स्वयं अपने व्यभिचारी जीवन को देखा है। तुम्हारे सामने ही यह सारा कलक कलुषित जीवन बीता है। इन्ही कुट्टिनियो ने तुम्हारे समस्त पुण्य को नष्ट किया था। तुम्हारी तरह ये भी इस नश्वर विलास मे मन को डुबाकर पूर्ण के प्रेम को भूल गये है ॥४ ॥

भ्रमन्त्येते मूढा लटभ-ललना-भोग-रसिकाः
स्मरान्धा वित्ताढ्या युवकहतका मूढमतिकाः ।
भृशं धृष्टा विद्धा अपि युवति-तीक्ष्णाक्षि-विशिखै,
सरोजिन्याः पृष्ठं जहति नहि मुग्धाः मधुलिहः ॥५ ॥

कितने दु ख की बात है कि ये मूढ लोग इन सुन्दर ललनाओ के भोग के पीछे भाग रहे है। ये कामान्ध वित्तविमूढ मूढमति दुष्ट युवक इतने ढीठ है कि मुग्ध भौंरो की तरह युवतियो के तीखे कटाक्ष बाणो से घायल होने पर भी कमलिनियो का पीछा नही छोड़ते ॥५ ॥

रागोपगूढा निकरे निगूढाः, भोगावलीढा गुरुभक्त्यपोढाः
विस्मृत्य हा ! पूर्णपथं विमूढाः, तुच्छे विमुग्धाः विचरन्त्यनूढाः ॥६ ॥

इस जन समुदाय मे छिपे हुए, विषयासक्ति मे लिप्त, भोगवृत्तिनिष्ठ, गुरु भक्तिहीन, कई मनचले अविवाहित युवक पूर्ण पथ को भुलाकर इस तुच्छ वासना के ही चक्कर मे घूम रहे है ॥६ ॥

स्मरन् व्यतीतां निज गर्ह्यवृतिम्,
विलोक्य तीरे च विलासदृश्यम्
वैराग्यभावोदित-पुण्यवृत्तिः
ऊचेऽनुतापं विततन् स वृद्धः ॥७ ॥

वह वृद्ध भी अपनी विगत गर्हितवृत्ति का स्मरण करता हुआ इस समुद्रतट पर घटित हो रहे विलास दृश्य को देखकर गुरुकृपा से हृदय मे जागृत हुई वैराग्यवृत्ति के पुण्य प्रताप से पुन अपने पूर्व कृत्यो पर पश्चाताप करता हुआ कहने लगा ॥७ ॥

वृद्धस्यानुतपनम्

वक्त्रं भावितमत्र पङ्कजदृशा श्रीर्नेक्षिता पङ्कजे,
पङ्के चन्दनभावना प्रणिहिता नो सौरभं चन्दने ।
पीतं हा गरलं स्मरान्धमतिना नास्वादितं रेऽमृतम्
तुच्छापूर्णतमप्रमुग्धमतिना पूर्णं मयोपेक्षितम् ॥८ ॥

मै नश्वरमुख को कमल की तरह समझता रहा परन्तु कमल की प्राकृतिक शोभा को नही परख पाया। कीचड को चन्दन मानता रहा परन्तु चन्दन की सुगन्ध पहचान न सका। मै कामान्ध, विष को अमृत समझता रहा परन्तु अमृत का स्वाद न पा सका। हाय। इस तुच्छ अपूर्ण विषयो के मोह मे मै पूर्ण की उपेक्षा ही करता रहा ॥८ ॥

कण्ठे मौक्तिकहारमुग्धमनसा नास्वादिता माधुरी
नाभौ मन्मथमन्दिरेऽभिरमता नो पद्मनाभोऽर्चितः ।
वंशीमुग्धकुरंगशावकधिया वंशीधरो विस्मृतः
पूर्णे राजति शाश्वतेऽपि कुधियाऽपूर्णे रतिः कल्पिता ॥९ ॥

मैं गले का मुक्ता हार तो देखता रहा परन्तु गले की मधुरता का आस्वादन नही कर पाया। इस मन्मथवाटिका वनिता की नाभि मे तो रमण करता रहा परन्तु पद्मनाभ की पूजा भूल गया। वसी की ध्वनि पर मोहित हरिण की तरह उस मधुर ध्वनि के पीछे तो भागता रहा परन्तु वशीधर को भूल गया। हाय ! शाश्वत के पूर्ण होते हुए भी मै हत बुद्धि अपूर्ण मे ही रमता रहा ॥९ ॥

मुग्धेनेन्दुमुखीसुखे न विदिता चन्द्रे सुधापूर्णता,
लालालुब्धमनोजवेन गणितं सत्सौरभं नाम्बुजे ।
धम्मिलेधृतबन्धनेन विदितंहा ! सौष्ठवं नाम्बुदे,
तुच्छापूर्णतमप्रमुग्धमनसा पूर्णं मयोपेक्षितम् ॥१० ॥

इस नश्वर चन्द्रमुखी के मोह मे चन्द्र गत सुधा की पूर्णता को भुला बैठा । लालाक्लिन्न मुख की ओर मन को भगाते हुए मैने कमल की सुगन्ध न पहिचानी । कामिनी के केशपाश को बादल समझकर उसमे तो बधा रहा परन्तु बादल की शोभा को विस्मृत कर गया । वस्तुतः मै इस तुच्छ अपूर्ण के मोह मे पडा पूर्ण को भूलता ही गया ॥१० ॥

पर्यङ्के प्रविलोपितं हि मृदुलं निश्शंकमुत्सङ्गकम्,
बालाया वदनानिलेन मलयप्राणा भृशं पीडिताः ।
तस्याः गौरमुखावगुण्ठनपटे क्षिप्तं विधोर्मण्डलम्
पूर्णोपेक्षितमानसेन न मयाऽपूर्णे क्षतिर्वीक्षिता ॥११ ॥

मै इस तुच्छ पर्यङ्क की गोद मे पडा उस पूर्ण की निःशक कोमल गोद को भूल गया । बाला के क्षणिक वदनानिल के मोह मे मलयानिल की पूर्णता को पीड़ित करता रहा । इस नश्वर घूघट मे छिपे गोरे मुख पर इस पूर्ण चन्द्र मण्डल को न्यौछावर करता रहा । हाय ! मैने इस अपूर्ण की कमी को तो देखा परन्तु पूर्ण की उपेक्षा ही की ॥११ ॥

भानौ भास्वति भासुरेऽपि लुलिता खद्योतभासे मतिः
नाभौ सत्यपि निर्मले हि सुभगे कस्तुरिका-सौरभे ।
किं त्वं मृग्यसि कानने हि वितथा मोहात्कुरङ्गात्मज !
व्याधं धावसि जीवनाय कुमते ! मृत्युञ्जयं नेक्षसे ॥१२ ॥

हाय ! सूर्य के प्रकाश को छोड़कर जुगनू के पीछे भागता रहा । इस मोहमुग्ध हरिण शावक ने अपनी नाभि मे विद्यमान कस्तूरी को नही पहचाना और कस्तूरी की सुगन्ध को बन मे ढूढता रहा । जीवन के लिये व्याध के सामने गया पर मृत्युञ्जय को नही पहचान पाया ॥१२ ॥

शब्दब्रह्मरसाब्धि-संभव-सुधालेपोदित-श्रीयुतम्,
चौपाटीतट चारि-चारु-वनिता-सौन्दर्य-संराजितम् ।
संयोगेन विलासिना विरहिणां व्यामोहनैर्मण्डितम्,
वैराग्योदितवेदने च विरतं काव्यं मुदे कल्पितम् ॥१३ ॥

शब्द ब्रह्म के रस सागर से निकली सुधा के लेप से शोभायमान, चौपाटी के किनारे विचरण करती सुन्दर वनिताओ के सौन्दर्य से मण्डित, रसिको के संगम से और वियोगियो की वेदना से वेष्टित एवं अन्त मे वैराग्योदित ज्ञान से विराजित, आनन्द के लिये लिखे गये इस काव्य को मै अब विराम दे रहा हूँ ॥१३

इति पण्डित श्रीरामदवे कविना विरचितं
सौन्दर्यलीलामृतं समाप्तम्



कवि परिचय



नाम	:	पं. श्रीराम दवे
पिता	:	पं. शकरलाल दवे
जन्मस्थान	:	गांव समदड़ी, जिला-बाड़मेर
जन्मतिथि	:	२२-९-१९२२ (आश्विकृष्णा प्रतिपदा संवत् १९७९
वर्तमान निवास स्थान	:	५५९-बी, 'श्री निकेतन', ८-सी रोड, सरदारपुरा, जोधपुर-३४२००३ (राजस्थान) फोन ' ४३२५२०
शिक्षा	:	एम. ए दर्शन साहित्यशास्त्री, काव्यतीर्थ
व्यवसाय	:	सेवानिवृत्त मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर जयपुर, जोधपुर शाखा
सम्मान	:	६-८-९० राजस्थान सरकार द्वारा विद्वत् सम्मान २९-३-९२ राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा "भृत्याभरणम्" महाकाव्य पर माघ पुरस्कार सम्मान २३-३-९८ राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा विद्तत्सम्मान २८-९-९८ जोधपुर की विविध संस्थाओं द्वारा नागरिक अभिनन्दन
साहित्य सर्जन महाकाव्य	:	भृत्याभरणम्, राजलक्ष्मीस्वयंवरम्, साकेत संगरम् ३ महाकाव्य
खण्डकाव्य	:	सौन्दर्यलीलामृतम्, वियोगशतकम्, ललिता-लहरी परिरवायुद्धम्, केलिभूकैतवम्, विनोद कौस्तुभम्, भारतीविलास-
लेख	:	संस्कृत की विविध पत्र पत्रिकाओं में लेख एवं कहानियाँ
अनुवाद	:	पं. मधुसूदन ओझा के ब्रह्मसमन्वय, ब्रह्मविनय एवं अत्रिख्याति का हिन्दी अनुवाद
सामाजिक सेवा	:	विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम् - प्रदेश सघटन मन्त्री "भारती" संस्कृत मासिक जयपुर सह-सम्पादक